Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीराम

गुरुदत्त

43
S
5

C-0. In P[illegible] l Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

168005

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री राम

Central Library
168005
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

गुरुदत्त

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web.: aarshsal
081
168005

हिन्दी साहित्य सदन - नई दिल्ली-05
www.hindisahityasadan.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

© hindisahityasadan

R
089.9143
GUR-S

मूल्य 80.00₹ 60P.00

प्रकाशक हिन्दी साहित्य सदन,
2, बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 देशबन्धु गुप्ता रोड
करोल बाग, नई दिल्ली-110005
दूरभाष 23553624, 23551344, 09213527666
ई–मेल hindisahityasadan@gmail.com
indiabooks@rediffmail.com
Website www.hindisahityasadan.com

संस्करण 2016

मुद्रक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: 1:

श्रीराम भगवान थे या परमात्मा का अवतार थे?

या श्रीराम एक महापुरुष थे?

हम कुछ भी मानें, इतना अवश्य है कि उन्होंने अपने जीवन में वह कार्य किया जो एक महान् आत्मा ही कर सकता है।

ऐसा क्या किया श्रीराम ने?

यह तो हम जानते हैं कि उन्होंने दुष्ट राक्षसों और उनके राजा रावण का वध किया।

क्या राक्षस दुष्ट थे? क्या रावण इतना बुरा व्यक्ति था कि उसका वध करना पड़ा?

रावण कौन था? राक्षस कौन थे?

कहते हैं कि लाखों वर्ष पूर्व पृथ्वी पर प्रलय आई थी और सम्पूर्ण पृथ्वी जल में डूब गई थी। सब कुछ नष्ट हो गया था। केवल कुछ भाग, जो बहुत ऊँचे थे, जल से बाहर रह गये थे और वहाँ कुछ लोग बच गये थे। उस बची हुई भूमि में देवलोक भी था। ऐसी मान्यता है कि यह वही क्षेत्र था जिसे आजकल तिब्बत कहते हैं।

देवताओं में एक वृद्ध तपस्वी ब्रह्मा थे जो उनके पितामह माने जाते थे। देवलोक का राजा इन्द्र था। देवलोक में सुख और शान्ति थी। लोग परिश्रम करते थे और उन्नति करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

© hindisahityasadan

R
089.9143
GUR-S

मूल्य 80.00₹ 60P.00

प्रकाशक हिन्दी साहित्य सदन,
2, बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 देशबन्धु गुप्ता रोड
करोल बाग, नई दिल्ली-110005
दूरभाष 23553624, 23551344, 09213527666
ई–मेल hindisahityasadan@gmail.com
indiabooks@rediffmail.com
Website www.hindisahityasadan.com

संस्करण 2016

मुद्रक
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: 1 :

श्रीराम भगवान थे या परमात्मा का अवतार थे?

या श्रीराम एक महापुरुष थे?

हम कुछ भी मानें, इतना अवश्य है कि उन्होंने अपने जीवन में वह कार्य किया जो एक महान् आत्मा ही कर सकता है।

ऐसा क्या किया श्रीराम ने?

यह तो हम जानते हैं कि उन्होंने दुष्ट राक्षसों और उनके राजा रावण का वध किया।

क्या राक्षस दुष्ट थे? क्या रावण इतना बुरा व्यक्ति था कि उसका वध करना पड़ा?

रावण कौन था? राक्षस कौन थे?

कहते हैं कि लाखों वर्ष पूर्व पृथ्वी पर प्रलय आई थी और सम्पूर्ण पृथ्वी जल में डूब गई थी। सब कुछ नष्ट हो गया था। केवल कुछ भाग, जो बहुत ऊँचे थे, जल से बाहर रह गये थे और वहाँ कुछ लोग बच गये थे। उस बची हुई भूमि में देवलोक भी था। ऐसी मान्यता है कि यह वही क्षेत्र था जिसे आजकल तिब्बत कहते हैं।

देवताओं में एक वृद्ध तपस्वी ब्रह्मा थे जो उनके पितामह माने जाते थे। देवलोक का राजा इन्द्र था। देवलोक में सुख और शान्ति थी। लोग परिश्रम करते थे और उन्नति करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु सव लोग एक समान योग्य नहीं होते। कुछ ऐसे भी थे जो कम योग्य थे तथा उनको उन्नति करने का अवसर नहीं मिलता था। इस कारण वे दु:खी हो गये। वे पितामह ब्रह्मा के पास गये और वोले, "पितामह, हम क्या करें? हमें यहाँ उन्नति करने का अवसर नहीं मिलता।"

ब्रह्मा जी ने देखा कि देवलोक की जनसंख्या वढ़ गई है और सव लोगों को उन्नति लिए यहाँ पर्याप्त अवसर नहीं है। उन्होंने कहा, "दक्षिण में भी कुछ द्वीप जल से वाहर हैं। तुम वहाँ जाओ। परिश्रम करो और सुख भोगो!"

उन लोगों ने कहा, "ठीक है पितामह! हम वहाँ जाएँगे और उन द्वीपों की रक्षा करेंगे।" उनका आशय था कि उन द्वीपों पर अधिकार कर, वहाँ वसने वालों की जंगली जीवों व जंगली लोगों से तथा अपने नवनिर्माण की भी रक्षा करेंगे।

ये लोग देवताओं के भाई ही थे। ये जव उन द्वीपों के रक्षक वने तो पहले उनको रक्षक ही कहा जाता था परन्तु कालान्तर में उनका नाम विगड़ कर राक्षस हो गया। उस समय राक्षस कोई वुरा शब्द नहीं माना जाता था। न ही राक्षस का मतलव यह है कि उनके वड़े-वड़े दाँत थे या वे वहुत डरावने दिखते थे। परन्तु सहस्त्रों वर्षों वाद जंगली लोगों को देख देख कर वे भी वुरे काम करने लगे, यहाँ तक कि मनुष्य का माँस खाने लगे, तव उनके शरीर वेडौल हो गए और माँसाहार के कारण उनके आगे के दाँत वाहर निकलने लगे जिससे उनकी आकृतियाँ भयंकर हो गयीं।

धीरे धीरे उन द्वीपों में रहते हुए उन्हें कई सहस्त्र वर्ष और व्यतीत हो गये। तव तक देवलोक से जुड़ी धरती भी जल से वाहर आ सूख गई थी और वहाँ मानव वसने आरम्भ हो गए थे जो अत्यन्त परिश्रम कर उन्नत हो गए थे। आर्यवर्त देश उन मानवों का मूल निवास था। यह आर्यवर्त ही आज भारत कहलाता है।

आर्यवर्त के दक्षिण में ही राक्षस वसे हुए थे। इन राक्षसों के वंश में एक राजा-हुआ विद्युत्केश। उसकी रानी थी सालकटङ्क्टा जो भोग-विलास में लीन रहती थी तथा किसी की भी परवाह नहीं करती थी। जो भी उसके भोग-विलास में वाधा डालता था उसे मरवा डालती थी।

इसी कारण जव उसका एक लड़का हुआ तो वच्चे का पालन-पोषण उसे झंझट प्रतीत हुआ। उसने अपने वेटे को भी मरवाने का यत्न किया। उसने अपने सेवकों को उसका वध करने के लिए कहा।

सेवक उस वालक को ले गये। वे स्वयं उसकी हत्या करना नहीं चाहते थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत: उसे मन्दराचल पर्वत के शिखर पर छोड़ आये। उनका आशय था कि वहाँ चील, कौए आकर उसे खा जाएँगे।

परन्तु उस समय कैलाशपति शंकर और देवी पार्वती अपने विमान में वैठे हुए भ्रमण कर रहे थे। वे कुछ ही समय पश्चात उधर से निकले तो उन्होंने एक छोटे से वच्चे को पृथ्वी पर पड़े रोते देखा तो विमान को नीचे भूमि पर ले आये। उस वालक को पार्वती ने उठा लिया। शिव पहचान गए कि वह विद्युत्केश का बेटा है। वे उसे अपने निवास-स्थान कैलाश पर्वत पर ले गये। पार्वती ने वालक का पालन-पोषण किया और इस वालक का नाम उन्होंने सुकेश रखा।

विद्युतकेश के पुन: कोई सन्तान नहीं हुई। इकलौते पुत्र के विछुड़ने से वह अत्यन्त दुखी रहता था। सुकेश जव वड़ा हुआ तो उसे यह वताकर कि तुम राजा विद्युत्केश के पुत्र हो, कैलाशपति ने उसे वापस भेज दिया। उसके लौटने के लिए उसे एक विमान उपहार में दिया। सुकेश का रंग-रूप व चलने-वोलने की विधि राजा विद्युत्केश के समान ही थी। विद्युत्केश उसे देखते ही पहचान गया व उसे युवराज घोषित कर दिया।

सुकेश वहुत वलशाली व वुद्धिमान था परन्तु भगवान् शंकर एवं पावर्ती द्वारा पालित होने के कारण तथा अपने पास विमान रखने के कारण उसमें अभिमान आ गया था।

सुकेश के तीन पुत्र उत्पन्न हुए- माल्यवान, माली और सुमाली। तीनों ही वड़े वलवान् थे। उन्होंने घोर तपस्या की और शस्त्रों का अभ्यास किया। इस प्रकार वे स्वयं को अतिश्रेष्ठ व्यक्ति मानने लगे। उनमें भी वहुत अहंकार आ गया।

अव उन्होंने दूसरे लोगों को तंग करना आरम्भ कर दिया। अपने देश से वाहर निकल दूसरे देशों पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। एक समय आया कि देवता, गन्धर्व व मानव इत्यादि सव-की-सव जातियाँ इन तीन भाइयों के अत्याचार से त्राहि-त्राहि कर उठीं। कोई इनका विरोध नहीं कर सका। वास्तव में सव जानते थे कि इनके पिता सुकेश शंकर के प्रिय हैं और यदि उन्होंने इन भाइयों से युद्ध किया तो शंकर उनके विरुद्ध हो जाएँगे।

वहुत से पीड़ित लोग मिलकर विचार करने लगे कि क्या करें। यह निश्चय किया कि कैलाशपति शंकर के पास चला जाये और उनसे कहा जाये कि सुकेश को सन्मार्ग दिखायें।

सभी लोग उनके पास गये, परन्तु श्री शंकर ने कहा, "सुकेश देवी पार्वती का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्रिय है, मैं उसे कुछ कह नहीं सकता, आप स्वयं उनसे बात करें।
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग देवी पार्वती के पास पहुंचे, परन्तु पार्वती को जब पता चला कि लोग सुकेश के विरुद्ध शिकायत लेकर आये हैं तो उन्होंने उनसे मिलने से ही इन्कार कर दिया।

अब लोग परेशान हो उठे। वे पुन: श्री शंकर के पास पहुँचे और बोले, "भगवन्, पार्वतीजी तो हमसे मिलती ही नहीं। अब आप ही बताइये हम क्या करें?"

कैलाशपति ने अपनी असमर्थता प्रकट की परन्तु उपाय भी सुझा दिया, "आप श्री विष्णु के पास जाओ। वह निश्चित ही कुछ उपाय करेंगे।"

दुखी लोग सागरपति श्री विष्णु के पास पहुंचे। विष्णु देवलोक के राजा इन्द्र का छोटा भाई था जो बहुत बलवान था और युद्धविद्या में पारंगत था। वह और उनकी धर्मपत्नि देवी लक्ष्मी, देवलोक से दूर महासागर में किसी जनशून्य टापू में रहते थे। महासागर में होने वाली किसी भी प्रकार की अनियमितता को रोकने में वे समर्थ थे। उनके पास कई दिव्यास्त्र थे। इनमें सुदर्शन चक्र भी था। सुदर्शन चक्र जिस पर छोड़ा जाता था उसको मारकर स्वयं ही चलाने वाले के पास लौट आता था।

जब दु:खी लोगों ने अपनी कथा सुनाई तो विष्णु बोले, "कैलाशपति ठीक कहते हैं कि वह तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते। पार्वती जी सुकेश को बहुत प्यार करती हैं इसलिए सुकेश के पुत्र भी उनको बहुत प्रिय हैं। मैं ही तुम्हारी रक्षा करूँगा।

इस प्रकार विष्णु ने राक्षसों पर आक्रमण की घोषणा कर दी।

जब राक्षसों ने विष्णु की घोषणा सुनी तो वे हँस पड़े। वे मानते थे कि जब तक माल्यवान, माली और सुमाली उनके साथ हैं कोई उनको हरा नहीं सकता। उन्होंने विष्णु के आक्रमण की प्रतीक्षा नहीं की। वे स्वयं विष्णुलोक पर आक्रमण करने चल पड़े। विष्णु भी दिव्यास्त्र ले राक्षसों से लड़ने निकल आये।

राक्षस संख्या में बहुत अधिक थे, परन्तु जब विष्णु ने दिव्यास्त्र चलाने शुरू किये तो गाजर-मूली की तरह राक्षसों के शरीर कटने लगे। उनकी इतनी अधिक हत्या हुई कि उनके शवों के ढेर पर्वत के समान ऊँचे-ऊँचे लग गये। राक्षस घबराकर दक्षिण की ओर भाग खड़े हुए और अपनी लंका नगरी में घुस गये।

श्री विष्णु ने यहीं पर बस नहीं किया। वह जानते थे कि जब तक बुराई को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जड़ से समाप्त न किया जाए बुराई कभी भी पनप सकती है और किसी को शान्ति

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से जीने नहीं देती। राक्षस लंका में रहेंगे, वे बाहर निकल पुनः भले लोगों को तंग करेंगे क्योंकि यह बुरे लोगों का स्वभाव बन जाता है कि भले लोगों को मारकर उनकी सम्पत्ति हड़प कर जाएँ और उनका माँस खा जाएँ जिससे कोई प्रमाण उनके विरुद्ध न रहे। इस कारण विष्णूने बुराई के स्रोत लंकापुरी पर आक्रमण कर दिया।

लंकापुरी अजेय मानी जाती थी। इस कारण राक्षस समझते थे कि यहाँ वे विष्णु को परास्त कर सकेंगे। परन्तु यहाँ विष्णु ने अपना सुदर्शन चक्र निकाल लिया। माल्यवान व माली इस युद्ध में मारे गए। उन्हें मरा देख सभी बचे-खुचे राक्षस लंकापुरी छोड़ पाताल लोक को भाग गये। इस प्रकार लंका जन-शून्य हो गई।

लंका जब खाली हुई तो देवराज इन्द्र ने महर्षि पुलस्त्य के पौत्र वैश्रवण को वहाँ का लोकपाल नियुक्त कर दिया। महर्षि पुलस्त्य अति ओजमय तथा अत्यन्त ज्ञानवान थे। उनका पुत्र विश्रवा और पौत्र वैश्रवण भी अति बलवान, तेजोमय तथा ज्ञानवान थे। वैश्रवण लंकापुरी में रहने लगा और राज्य चलाने लगा। यही वैश्रवण बाद में कुबेर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

: 2 :

पाताल लोक में जंगल-ही-जंगल थे। वहाँ हिंसक पशु-पक्षी ही थे। वनस्पतियाँ सर्वथा नवीन प्रकार की थीं। राक्षस नहीं जानते थे कि क्या खाया जाये और क्या न खाया जाये?

सुमाली अपने पिता का विमान बचाकर ला सका था। इस विमान में बैठकर वह इस नये देश का सर्वेक्षण कर अपने सजातियों को बसाने में सफल हुआ था। उसने यह पता कर लिया था कि कहाँ-कहाँ फलों वाले वृक्ष हैं, कहाँ भूमि कृषि योग्य है और कहाँ पीने योग्य जल मिल सकता है। इस पर भी वहाँ वह खुशहाली नहीं थी जो लंका में थी।

माल्यवान, सुमाली और माली तीनों भाइयों में से सुमाली ही जीवित बचा था। उसका परिवार भी सुदर्शन-चक्र की अग्नि में भस्म हो गया था। कुछ राक्षस अपनी पत्नियों और परिवार को बचाकर ले जा सके थे, उनके बसने में सुमाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने पर्याप्त सहायता की। उसने अपने लिये भी एक छोटा सा निवास स्थान बनवाया और एक कन्या से विवाह कर नये परिवार की सृष्टि आरम्भ कर दी। कालान्तर में उसके एक लड़की हुई। जो बहुत सुन्दर थी।

कुछ राक्षस अपनी अवस्था से दु:खी थे। वे पुन: लंका में एक नया राज्य स्थापित हुआ देख वहाँ बसने की योजना बनाने लगे। दो-दो चार-चार कर वे लंका में पहुँचने लगे और वहीं बसने लगे। कुबेर ने भी इन लोगों को बसने से मना नहीं किया क्योंकि देवता और आर्यवर्त देश के मानव लंका में बसने के लिए तैयार नहीं होते थे। वहाँ का जलवायु उनके अनुकूल नहीं था।

राक्षसों को पुन: लंका लौटते देख सुमाली को विचार आया कि वह भी क्यों न लौट जाये? परन्तु जिस देश का वह राजा रह चुका था, वहाँ वह साधारण नागरिक बनकर रहने के लिए मन को तैयार नहीं कर सका।

उसके मन में एक योजना बन गयी। वह अपनी लड़की को विमान में बैठा लंका जा पहुँचा। उसका विचार था कि वह अपनी लड़की का, लंका के अधिपति कुबेर से विवाह कर देगा तो वह राज्य में एक अधिकारी तो बन ही जायेगा।

अत: लंका में एक स्थान पर ठहर कर वह राजप्रासाद में राजा को देखने गया। परन्तु वहाँ जाकर वह समझ गया कि यह योजना सफल नहीं हो सकेगी।

जब सुमाली राजप्रासाद के बाहर पहुँचा तो वहाँ एक बहुत बड़ा विमान खड़ा था। वह उसे देख चकित रह गया। वह अभी उसे देख ही रहा था कि राजा अपनी रानी के साथ राजप्रासाद से निकला।

कुबेर अति सुन्दर और ओजस्वी युवक था और उसकी पत्नी एक देवकन्या थी, जो उससे भी अधिक सुन्दर थी।

इनको देख सुमाली समझ गया कि उसकी लड़की का विवाह यहाँ नहीं हो सकेगा। यदि किसी विधि से हो भी गया तो वह इस रानी की तुलना में मान-प्रतिष्ठा नहीं पा सकेगी।

अत: अपने निवास-स्थान पर पहुँच उसने अपनी योजना बदल दी। उसने विचार किया कि इस युवक के पिता के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दे और उससे जो सन्तान हो, उसके द्वारा लंका पर अधिकार जमा ले।

इस विचार के आते ही वह विमान पर चढ़कर देवलोक जा पहुँचा और वहाँ ऋषि विश्रवा के आश्रम के समीप विमान खड़ा कर ऋषि विश्रवा को देखने चला गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि एक कुटिया के बाहर वृक्ष के नीचे आसन लगाये स्वाध्याय कर रहे थे। वह अति ओजवान थे।

सुमाली विमान पर लौट आया और अपनी लड़की कैकसी से बोला, "कैकसी! मैं तुम्हें यहाँ अपने परिवार का एक महान् कल्याण करने के लिए लाया हूँ। यहाँ एक अति ओजस्वी ऋषि रहता है। उसकी पहली पत्नी से एक सन्तान है। वह सन्तान अति सुन्दर और बलवान है। वह इस समय लंका पर राज्य कर रहा है। वह राज्य किसी समय हमारा था। मैं चाहता हूँ कि तुम ऋषि से विवाह कर वैसी ही सुन्दर और ओजस्वी सन्तान प्राप्त करो। इससे हमारा परिवार अपना पुराना राज्य पुन: प्राप्त करने में सफल हो सकेगा।"

कैकसी ने कहा, "मुझे ऋषि दिखा दीजिए, मैं उनको विवाह के लिए मना लूँगी।"

"ठीक है। चलो मेरे साथ।"

सुमाली स्वयं ऋषि के सम्मुख जाना नहीं चाहता था। इस कारण उसने दूर से ही ऋषि को दिखाकर कहा, "अब तुम स्वयं उससे बातचीत कर लो।"

कैकसी ने कुबेर को देखा था और उसके पिता को भी देख लिया। ऋषि उस समय आँखें मूंदे ध्यान लगाये बैठे थे।

कैकसी ने ओजस्वी ऋषि को पसन्द किया और उनके सामने जा खड़ी हुई। ऋषि का ध्यान भंग नहीं हुआ। वह हाथ जोड़ खड़ी रही और ऋषि द्वारा आँखें खोलने की प्रतीक्षा करने लगी। वह दो घड़ी-भर खड़ी रही, तब ऋषि की आँख खुली। ऋषि हवन के लिए अरणों को घिस अग्नि प्रदीप्त करने लगे तो उनकी दृष्टि सामने खड़ी इस सुन्दरी की ओर चली गयी। दोनों की आँखें मिलीं तो कैकसी की आँखें झुक गयीं। ऋषि ने पूछ लिया, "सुन्दरी! क्या चाहती हो? किसलिये हाथ जोड़े खड़ी हो?"

कैकसी बोली, "भगवन्! वर चाहती हूँ।"

"माँगो। हमारी सामर्थ्य में हुआ तो देंगे।"

भगवन्! मैंने आपके पुत्र लंकापति जो अब कुबेर के नाम से जाना जाता है, को देखा है। वैसा ही पुत्र पाने की अभिलाषा से खड़ी हूँ।"

"परन्तु यह तो ईश्वर के अधीन है।"

"महाराज! ईश्वर की प्रेरणा से ही यहाँ आयी हूँ और आपकी सामर्थ्य को जानती हुई आपकी सेवा में उपस्थित हुई हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ऋषि स्वयं भी लड़की के सौन्दर्य पर मुग्ध हो रहे थे। इस कारण आँखे मूँद कुछ समय विचार करते रहे तदुपरान्त बोले, "इस सामने वाले आसन पर बैठ जाओ।"
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैकसी आसन पर बैठी तो ऋषि ने अग्नि प्रदीप्त की और हवन आरम्भ कर दिया।

हवन समाप्त हुआ तो ऋषि ने शान्ति पाठ पढ़ा, तदनन्तर सामने बैठी लड़की को कहा, "अब उठकर मेरे वाम हस्त के साथ आसन पर बैठ जाओ। हमने तुम्हें अपनी पत्नी के रूप में वर लिया है।"

: 3 :

मुनि विश्रवा की प्रथम पत्नी रोहिणी, जो कुबेर की माँ थी, की अपनी कुटिया, ऋषि के आश्रम में ही थी, परन्तु ऋषि की कुटिया से पृथक कुछ अन्तर पर थी।

ऋषि कैकसी के साथ कई वर्ष तक सुखपूर्वक दाम्पत्य जीवन चलाते रहे। परिणामस्वरूप कैकसी के चार सन्तान हुईं। पहली सन्तान एक पुत्र था। जब इसका जन्म हुआ तो उस समय रात्रि थी— भयंकर आँधी, बिजली की कड़क और वर्षा हो रही थी। बिजली की गरज से वन-पशु भयभीत हो चीखते-चिल्लाते सुनायी दे रहे थे।

इस पर भी लड़का देखने में अति सुन्दर, शरीर से सुदृढ़ तथा सतर्क था। कुछ ही दिनों में यह स्पष्ट हो गया कि लड़का मेधावी और संसार में प्रभुता-सम्पन्न होगा। उचित समय पर पिता ने इसकी बुद्धि की प्रखरता देख इसका नाम दशग्रीव रख दिया। दशग्रीव का अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि उसकी बुद्धि दस मनुष्यों के बराबर थी। दशग्रीव ही बाद में रावण के नाम से विख्यात हुआ।

कैकसी की दूसरी सन्तान भी एक लड़का था, परन्तु इसका शरीर बेडौल था। बृहत्काय, बड़े-बड़े कान और जब मुख से आवाज़ निकलती थी ऐसा प्रतीत होता था जैसे कुम्भ (घड़े) में आवाज़ गूंज रही हो। इसका नाम कुम्भकरण रखा गया।

तीसरी सन्तान एक लड़की थी। वह अति सुन्दर परन्तु तीखे स्वभाव वाली प्रतीत होती थी। उसका नाम शूर्पणखा रखा गया। कैकसी की चौथी सन्तान पुनः एक लड़का हुआ। यह दोनों भाइयों से अधिक सुन्दर था और मधुर स्वभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

रखता था। इसका नाम विभीषण रखा गया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभीषण बाल्यकाल से ही सौम्य स्वभाव वाला और ईश्वरभक्त था। वह अपने पिता से शिक्षा पाकर द्रुत-गति से शास्त्र का ज्ञाता होने लगा। दशग्रीव और कुम्भकरण, शास्त्र-शिक्षा से अधिक खेल-कूद तथा मल्ल-युद्ध में रुचि लेते थे। कैकसी की लड़की तो दिन-भर वनों में घूमती रहती थी।

सुमाली इस बीच अपनी लड़की से मिलता रहा था। परन्तु वह कभी ऋषि के सम्मुख नहीं आया था।

दशग्रीव अट्ठारह वर्ष की वयस् का हुआ तो एक दिन सुमाली एकान्त में कैकसी से मिलकर कहने लगा, "देखो कैकसी! अब समय आ गया है कि तुम उस योजना को आगे चलाओ, जिसके लिए मैंने तुम्हें यहाँ भेजा था।"

"मैं क्या करूँ, बाबा!"

"अपने पुत्रों को ब्रह्मलोक में शिक्षा के लिए भेज दो। वहाँ युद्ध-विद्या सिखाने का एक विशेष विद्यालय है। वहाँ इनको प्रवेश दिला दो।"

"परन्तु सुना है कि वहाँ देवताओं के अतिरिक्त अन्य किसी को प्रवेश नहीं मिलता।"

"यह मैं जानता हूँ। परन्तु ऋषि चाहेंगे तो तुम्हारे पुत्र वहाँ प्रवेश पा जायेंगे। वास्तव में हम देवताओं के भाई ही तो हैं और यह हमारा अधिकार भी है।"

"पर बाबा! यदि ऋषि ने पूछा कि वहाँ बच्चों को भेजने का क्या उद्देश्य है तो क्या बताऊँगी?"

"यही कहना कि यहाँ बच्चे उच्छृंखल होते जाते हैं वहाँ वे पढ़ कर विद्वान बनेंगे।"

सुमाली ने दशग्रीव और कुम्भकरण को भी समझाया। उसने उन्हें एकान्त में बुलाकर बताया कि वे कौन हैं। उसने यह भी कहा कि राक्षसों की सन्तान होने के कारण वास्तव में वे लंका के राजा हैं। वहाँ का राजा बनने के लिए उन्हें कुबेर को पराजित करना पड़ेगा और इसके लिए ज्ञानवान तथा शस्त्र-विद्या में निपुण बनना होगा। उसने अन्त में कहा—

"मैं चाहता हूँ कि तुम ब्रह्मलोक में चले जाओ। वहाँ सभी विद्याओं के विद्यालय हैं। उस विद्यालय के कुलपति ब्रह्माजी स्वयं हैं। तुम्हें वहाँ जा कर युद्धविद्या में पारंगत होना है। उसके लिए घोर तपस्या और विद्याध्यन की आवश्यकता रहती है। अब तुम यह करने के योग्य हो गये हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
"देखो बेटा! तुम वहाँ से शिक्षित हो जाओगे तो तुम्हें मैं लंका का राज्य दिलवा दूँगा। सहस्त्रों राक्षस तुम्हारी सहायता के लिए वहाँ एकत्रित हो जायेंगे।"

कुम्भकर्ण इस कठोर तपस्या और शीतप्रधान व्रह्मदेश में जाकर रहने के लिए तैयार नहीं होता यदि दशग्रीव उसे सचेत और प्रेरित न करता। वह तो नाना की वात सुनता-सुनता भी ऊँघने लगा था। जव सुमाली अपनी इच्छा कह चुका तो दशग्रीव तुरन्त तैयार हो गया, परन्तु कुम्भकर्ण से जव सुमाली ने पूछा तो उसने नाना की वात सुनी ही नहीं थी।

उसने सचेत हो पूछा, "क्या कहा है नाना?"

दशग्रीव ने वताया, "इसने आपकी वात सुनी ही नहीं। यह उस समय सो रहा था।"

"तो फिर?

दशग्रीव ने उसकी पीठ में एक मुक्का लगाकर कहा, "अरे कुम्भ! सुनो, हमें अव यहाँ से चलना होगा।"

"कहाँ?" कुम्भकर्ण ने पूछ लिया।

"व्रह्मलोक में। शस्त्रास्त्र की विद्या सीखने।"

"पर वहाँ तो वहुत शीत होगी।"

"कुछ भी हो, चलना होगा।"

पिता विश्रवा मुनि से व्रह्मा के नाम पत्र विना प्रयास मिल गया जिसे ले दोनों भाई व्रह्मलोक में जा पहुँचे।

पाँच वर्ष की कठोर शिक्षा से दोनों भाई युद्धविद्या में निपुण हो गए। इतने काल में वुद्धिमान दशग्रीव तो वेदादि विद्याएँ भी पढ़ गया। दोनों की लगन से व्रह्माजी भी प्रसन्न हो गए। दोनों के लौटने से पूर्व उन्होंने दोनो को वर, अभिप्राय यह कि विशेष शस्त्र शिक्षा एवं दिव्य शस्त्र दिये।

दोनों भाई लम्वी यात्रा कर पिता के आश्रम लौट आए। अपनी शिक्षा के प्रमाण-पत्र अपने माता-पिता को दिखाए। माता-पिता प्रसन्न हो गए।

कुछ दिन वाद दोनों नाना के पास पहुँचे। सुमाली उनकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। सुमाली को उनके प्रमाण-पत्र और व्रह्माजी के वर का ज्ञान हो चुका था। दोनों को देख कर प्रसन्ता से वोला, "वहुत अच्छा हुआ तुम आ गए हो अव तुम मेरे साथ लंकापुरी को चलो और उसे देख लो कि कितना सुन्दर राज्य है। तुम ही उसके वास्तविक अधिकारी हो। पहले लंका का पूर्ण इतिहास सुन लो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लंका का इतिहास सुन दोनों बहुत उत्सुकता के साथ सुमाली के साथ लंका जा पहुँचे। चारों ओर सागर से घिरी लंकापुरी और उसमें सुदृढ़ प्राचीरों से घिरा हुआ स्वर्ण तथा रत्नजड़ित द्वारों वाला महल इस प्रकार शोभायमान हो रहा था जैसे आकाश में सूर्य होता है ।

सुमाली ने अपने नातियों को पूर्ण लंकापुरी में घुमाकर उसके सौन्दर्य व शोभा को दिखाया तो दशग्रीव में उसे प्राप्त करने की लालसा जाग गई। उसने कहा, "नाना! इसे विजय करने के लिए घोर युद्ध करना पड़ेगा।"

"देखा जाएगा। पहले तुम कुवेर के भाई के नाते इस पर अपना दावा करो। यदि वह स्वीकार नहीं होगा। तव मैं इस देश में बस रहे सहस्त्रों राक्षसों की सहायता से विद्रोह करा, तुम्हें यहाँ का राजा बनवा दूँगा।"

"किसके पास दावा करूँ?

"अपने पिता के पास। उनको कहना कि तुम छोटे हो। वड़ा भाई कुवेर देवताओं की सहायता से एक नया नगर वसा सकेगा, परन्तु तुमको देवता न तो स्थान देंगे और न ही अन्य सहायता। इस कारण यह राज्य तुम्हें सौंप दिया जाये।"

दशग्रीव ने अपने पिता से जाकर कहा, "पिताजी! अपनी शिक्षा पूर्ण कर मैं अव किसी राज्य का राजा वनने के योग्य हो गया हूँ। इस कारण वड़े भाई कुवेर को आप कह दें कि वह लंका का राज्य मुझे दे दे।"

"और वह क्या करे?"

"वह अति धनवान और योग्य व्यक्ति है। देवता लोग उसके ऋणी हैं। इस कारण उसे नवीन नगर और राज्य के निर्माण में कष्ट नहीं होगा।"

"ऐसा करो," विश्रवा ने कह दिया, "तुम कुवेर के पास चले जाओ और राज्यकार्य में उसकी सहायता करो। तुम अपनी योग्यता से अपने बड़े भाई से अधिक मान-प्रतिष्ठा पा जाओगे।"

"पर मैं तो अपना पृथक् राज्य चाहता हूँ।"

"जो अपने भाई की समृद्धि को देख कर ईर्ष्या करता है, उसकी त्रिलोक में भारी निन्दा होगी।"

"पिताजी! मैं निन्दा से नहीं डरता। मैं तो यह कहता हूँ कि मेरा लंका के राज्य पर दोहरा दावा है। आपका पुत्र होने से मैं, पितृ-पक्ष से लंका पर राज्य करने का अधिकार रखता हूँ। दूसरे, यह नगरी मेरे नाना के पिता और भाइयों ने निर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ण की थी और वसायी थी। इस कारण मातृ-पक्ष से भी मेरा इस राज्य पर अधिकार है।"

परन्तु यह राज्य कुबेर को इन्द्र ने दिया है, मैंने नहीं दिया। इस कारण मैं उसको तुम्हें कैसे दे सकता हूँ?"

"तव तो पिताजी! कुबेर एवं इन्द्र दोनों से युद्ध होगा। राज्य उसका ही होगा जो युद्ध में विजय प्राप्त करेगा।" हठी दशग्रीव बोला।

"परन्तु इन्द्र तुम्हारी हत्या कर देगा।"

"देखा जाएगा। यदि मेरा वस चला तो मैं इन्द्र की हत्या कर दूँगा।"

"इस झगड़े में किसलिये पड़ते हो? तुम कुबेर के पास चले जाओ और उस राज्य का भोग तुम सभी भाई मिल कर आनन्द से करो। राज्य का उत्तरदायित्व उसके कन्धों पर ही रहने दो।"

"नहीं पिताजी! मैं राज्य ही लूँगा।"

अच्छा, अव तुम जाओ। मैं इस विपय पर बात करना नहीं चाहता। इसमें मेरा अधिकार भी नहीं।" विश्रवा ने कहा और मुख मोड़ लिया।

दशग्रीव उठा और कुटिया से निकल गया! समीप कैकसी वैठी पिता-पुत्र का सम्वाद सुन रही थी। दशग्रीव के चले जाने पर उसने कहा, "भगवन्! यह आपने क्या कर दिया है?"

"क्या कर दिया है?"

"भाई-भाई में द्वेप का बीज बो दिया है।"

"यह मूर्ख वालक नहीं जानता कि वह क्या कह रहा है?"

"श्रीमान! वह ब्रह्मलोक से घोर तपस्या द्वारा शस्त्रास्त्र की विद्या सीखकर आया है। बड़ा भाई तो शायद इस पर दया कर दे, परन्तु इस युद्ध में सम्भावना तो बड़े भाई के मारे जाने की है।"

"देवता मरते नहीं।"

"परन्तु मर तो रहें हैं। विष्णु अव नहीं रहे।"

"पढ़े लिखे मूर्ख को कौन समझाए?" कह कर ऋषि चुप कर गए।

: 4 :

मुनि विश्रवा के आश्रम के बाहर सुमाली दशग्रीव की प्रतीक्षा कर रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जव वह वाहर आया तो उसने पूछ लिया, "वताओ क्या कर आये हो?

"आपकी योजना विफल हो गयी है। भाई के नाते मुझे राज्य नहीं मिल सकता। यह राज्य देवताओं ने धनाध्यक्ष को दिया है अत: पिताजी इसमें मेरी कोई सहायता नहीं कर सकते। देवता ही मुझे राज्य दे सकते हैं और वे देंगे नहीं"

"परन्तु दशग्रीव! राज्य कई प्रकार से लिया जा सकता है। इनमें छल, वल और भय प्रवल उपाय हैं। इस समय लंका की प्रजा में तीन-चौथाई राक्षस हैं। मेरे मित्र और सहायक पुन: राक्षस राज्य की प्रप्ति के लिए राक्षसों का संगठन पूर्ण कर चुके हैं।

"मेरा मित्र प्रहस्त है जिसने प्रजा से सम्पर्क वनाया हुआ है। उसके सहायक हैं मारीच, विरुपक्ष और महोदर। हम वहाँ चलते हैं। ये साथी प्रजा की सहायता से तुम्हारे भाई को राज्य त्यागने के लिए विवश कर देंगे! हमारे लोग किसी नेता की प्रतीक्षा कर रहे थे, अव तुम आ गए हो और सर्वप्रथम वहाँ के राजा को हम भयभीत करेंगे। यदि इससे काम न चला तो छल अथवा वल का प्रयोग करेंगे। मेरा अनुमान है कि तुम विना भाई के हत्यारे कहलाये राज्य पा जाओगे।"

दशग्रीव अपने नाना के साथ विमान में लंका जा पहुँचा। उसके दोनों भाई और वहन अभी माँ के पास ही रहे। लंका में दशग्रीव के पहुँचते ही सुमाली ने प्रहस्त को वुला भेजा और वह दशग्रीव को लेकर नगर के एक मकान में चला गया। वहाँ प्रहस्त के अन्य साथी उपस्थित थे।

प्रहस्त ने नगर में यह सूचना भेज दी कि उनके भूतपूर्व राजा सुमाली का नाती अपने नाना का राज्य प्राप्त करने लंका में आ गया है। इस सूचना पर नगर के राक्षस दशग्रीव के दर्शन करने आने लगे।

देव-राज्य और राक्षस-राज्य में अन्तर यह था कि देव-राज्य में परिश्रम का फल मिलता था और राक्षस-राज्य में शक्तिशाली जो चाहे, ले सकता था। इस कारण शरीर से शक्तिशाली राक्षस इस गुट में सम्मिलित होकर लाभ उठाना चाहते थे।

मारीच इत्यादि ने यह विख्यात कर रखा था कि राक्षस यक्षों (कुवेर के सजातियों) से अधिक वलशाली हैं। वल तो दोनों का एक समान था परन्तु राक्षस क्रूर एवं छलि थे। यह उनका स्वभाव वन चुका था कि विना भय के किसी नियम कानून को वे नहीं मानते थे। अत: वे जानते थे कि वे यदि संगठित हो जायें तो राज्य उनका हो जायेगा। इस आशा पर राक्षसों का संगठन वन गया। सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बलशाली लोग दशग्रीव को राजा बनाने के लिए तैयार हो गये। उनकी समझ में आने लगा कि राक्षस-राज्य स्थापित होने से उनको सब प्रकार की सुख-सुविधा अनायास ही मिलने लगेगी।

जब दशग्रीव के निवास-स्थान के बाहर सहस्त्रों की संख्या में बलवान राक्षस एकत्रित हो रहे थे तो प्रहस्त दशग्रीव का दूत बन कुबेर के राजप्रासाद में जा पहुँचा। उसने सूचना भेज दी कि महाराज के कनिष्ठ भ्राता दशग्रीव का मन्त्री प्रहस्त, महाराज के दर्शन करना चाहता है।

इस सूचना पर कुबेर ने प्रहस्त को भीतर बुला अपने सम्मुख बैठा पूछ लिया, "कहाँ है दशग्रीव?"

"महाराज! वह नगर चौराहे के एक भवन में ठहरा हुआ है।"

"यहाँ क्यों नहीं आया?"

"इसी विषय में उनका एक संदेश लेकर मैं आया हूँ।"

"हाँ बताओ।"

प्रहस्त ने अति सभ्य भाषा में कहा, "महाराज! इस नगरी का अधिकत्तर निर्माण राक्षसों के राजा सुकेश और उसके पुत्रों ने किया था। उससे पहले यहाँ उनके पूर्वजों ने राज्य स्थापित किया था। अत: राक्षस यह समझते हैं कि आपका यहाँ राज्य-पद पर आसीन होना अनाधिकार चेष्टा है। अब राक्षसों ने आपके छोटे भाई और सुकेश के सुपुत्र सुमाली के नाती दशग्रीव को अपना राजा स्वीकार कर लिया है। अत: वे चाहते हैं कि यह राज्य आप अब अपने छोटे भाई को दे दें।"

कुबेर ने कह दिया, "परन्तु यहाँ शासन मैं नहीं करता। यहाँ के नागरिकों की एक समिति शासन करती है। उस समिति में राक्षस ही अधिक संख्या में हैं। मैं तो केवल उस समिति के कार्य में उस समय हस्तक्षेप करता हूँ, जब समिति के सदस्य परस्पर सहमत नहीं होते।

"इस कारण मुझसे शासन लेने का तो प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। दशग्रीव को कहो कि नगर के भवन को छोड़ दे और यहाँ आ जाये।"

"महाराज! वह आपके रहते यहाँ नहीं आयेगा। वह चाहता है कि आप यहाँ से चले जायें। यह राज्य राक्षसों का ही था। विष्णु ने राक्षसों की हत्या कर के लंका पर अधिकार प्राप्त किया था। अब राक्षस पुन: अपना राज्य वापस लेना चाहते हैं। अत: आप यह लंका राक्षसों को लौटा दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु प्रजा इसे स्वीकार नहीं करेगी।"

"महाराज!" प्रहस्त ने कहा, "यह बात प्रजा द्वारा स्वीकार कर ली गयी है कि उनका मनोनीत राजा दशग्रीव यहाँ राज्य करेगा। आप अभी अपना प्रतिनिधि भेज पता करिये। सहस्त्रों की संख्या में नागरिक दशग्रीव के निवास के बाहर एकत्रित हो उसकी जय-जयकार बोल रहे हैं।"

कुवेर विचार-मग्न हो गया। कुछ विचार कर उसने कहा— मैं कल मध्यान्होत्तर तक निर्णयात्मक बात करूँगा कि मैं प्रासाद छोड़ूंगा अथवा अपने भाई को युद्ध के लिए ललकारूँगा।"

प्रहस्त अपना कार्य कर दशग्रीव के निवासस्थान को लौट गया।

कुवेर ने तुरन्त पुष्पक विमान निकलवाया और दशग्रीव के निवासस्थान के ऊपर एक चक्कर लगा कर वहाँ एकत्रित राक्षसों की महति भीड़ देखी। उस उत्तेजित भीड़ को देख वह मन ही मन भयभीत हो गया और तुरन्त विमान द्वारा पिता के आश्रम को उड़ चला। ऋषि विश्रवा का आश्रम हिमालय के तलहटि में देवलोक की सीमा पर था।

पिता के आश्रम में पहुँच उसने पूर्ण स्थिति का वर्णन किया और पूछ लिया, "पिताजी! अब मुझे क्या करना चाहिए?"

ऋषि विश्रवा ने पूछा, "कुवेर! कब से राज्य कर रहे हो वहाँ?"

"पैंतीस वर्ष से अधिक हो चुके हैं।"

"इस काल में तुमने कितने लोग ऐसे निर्माण किये हैं जो तुम्हारे लिये लड़ने-मरने को सदा तैयार हों?"

"वहाँ अस्सी प्रतिशत से अधिक राक्षस जाति के लोग बसे हैं। शेष बीस प्रतिशत में प्राय: गन्धर्व, वैश्य और शूद्र हैं।"

"तुमने राक्षसों को किसलिए वहाँ बसा रखा है?"

"अन्य कोई वहाँ बसने के लिए आता नहीं था। देवता तो अपने शीत-प्रधान देश को छोड़ वहाँ उष्ण और गीले वायुमण्डल में जाकर रहना नहीं चाहते। गन्धर्व और किन्नर एक स्थान पर टिक कर रहते नहीं। वे थोड़ी सी संख्या में वहाँ रहते तो हैं, परन्तु युद्ध की आशंका होने पर वे वहाँ से चल देंगे।"

"वहाँ समीप ही वनवासी व आदिवासी मानवों की कई जनजातियों के लोग रहते थे। उनको किसी प्रकार का प्रलोभन देकर वहाँ बसाने का यत्न क्यों नहीं किया?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आर्य मानव तो वहाँ आते नहीं, सुमाली इत्यादि भाईयों के उत्पात के पश्चात विन्ध्याचल से ऊपर के देशों में ही रहना पसन्द करते हैं। अन्य जन-जातियों के लोग अति असभ्य हैं, अत: उनको शिक्षित कर काम सिखाना वहुत टेढ़ी खीर है। राक्षस उनसे अधिक वलशाली, अच्छे योद्धा एवं कार्यकुशल हैं।"

ऋषि ने क्रोध में अपने पुत्र को सम्वोधन कर कहा, "वैश्रवण! तुम एक अयोग्य शासक सिद्ध हुए हो। तुम्हारे अनुसार दशग्रीव के साथी तुम्हारे राज्य में तुम्हारे साथीयों से कई गुना अधिक हैं। अव अपनी अयोग्यता के दोष को मिटाने के लिए अपने अनुगामी भक्तों की हत्या करवाओगे। विजय तुम्हें तव भी नहीं मिलेगी क्योंकि तुम्हारे सच्चे मित्र एवं साथी अत्यन्त सीमित सँख्या में हैं। युद्ध में वे सभी मारे जाएंगे। यह महापाप हो जायेगा।

"तुम यह नहीं समझ सके कि सरलचित जंगली जातीयाँ इन कुटिल राक्षसों से अधिक विश्वास के योग्य हैं। कुशलता क्या श्रेष्ठता का स्थानापन्न हो सकती है? श्रेष्ठता जन्मजात होती है। अपने पैंतीस वर्षों के राज्यकाल में उन श्रेष्ठ लोगों को शिक्षा, अभ्यास और अच्छी संगति से अपने कार्यकुशल मित्र और सहायक वनाया जा सकता था। अत: तुम राज्य के लायक नहीं हो।"

कुवेर ने अपने मन की वात कह दी। उसने कहा, "पिताजी! मैं इन्द्रदेव के पास सहायता के लिए जाना चाहता हूँ।"

"वह क्या करेगा? व्यर्थ की हत्यायें तुम जैसे अयोग्य शासक के राज्य की रक्षा करने के लिए मैं उचित नहीं मानता। इससे न तुम्हारा कल्याण होगा, न देवताओं का।

"मेरी सम्मति मानो। तुम अपने परिवार को लेकर वहाँ से चले आओ। अपने लिए स्थान कहीं देवलोक क्षेत्र में वना लो। यहाँ अभी वहुत स्थान रिक्त पड़ा है।"

कुवेर पिता का मुख देखता रह गया। पिता ने आगे कहा, "भाई-भाई परस्पर लड़कर एक दूषित प्रथा को मत चलाओ। राज्य के लिए भाई-भाई लड़ते हुए शोभा नहीं पाते।"

"ऐसा तो पहले भी हो चुका है।" कुवेर ने साहस पकड़ कहा, "हिरण्यकशिपु और विष्णु लड़ चुके हैं। आदित्य और दैत्य भी कई वार लड़ चुके हैं। वलि और इन्द्र का झगड़ा भी विख्यात है। वामन का छल से वलि का राज्य लेना भी इतिहास में लिखा मिलता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि ने मुस्कराते हुए कहा, "इसी से तो कहता हूँ कि तुम केवल अयोग्य ही नहीं, वरन् मूर्ख भी हो। अपनी रक्षा के लिए अयोग्य राजा अब दूसरों से सहायता की भीख मांगेगा। सहायता मांगने से पूर्व स्वयं को देखो कि पैंतीस वर्षों के राज्य में कुछ सहस्त्र सहायक भी एकत्रित नहीं कर सके। सहयता उसे ही मिलती है जो स्वयं अपने बल पर कुछ करने योग्य हो।

"देखो वैश्रवण! हिरण्यकशिपु का और विष्णु का वही झगड़ा था जो विष्णु और माल्यवान का था। वहाँ राज्य का झगड़ा नहीं था। वहाँ संस्कृति और संस्कारों का झगड़ा था। वहाँ श्रेष्ठता और नृशंसता का झगड़ा था। यही बात वामन और वलि की थी। प्रजा का धन ले-लेकर बलि अपने यज्ञों पर व्यय कर रहा था। यज्ञों में भी पात्र-कुपात्र का विचार किये बिना दान दिया जाता था। वामन ने कुपात्रों को दान देने की उसकी मिथ्या उदारता की व्यर्थता को दशनि के लिए ही वह आयोजन किया था। न तो विष्णु ने हरिण्यकशिपु का राज्य लिया था और न ही वामन ने बलि का।

जब आदित्यों का राज्य दैत्यों ने छीनने का प्रयास किया तो आदित्यों ने स्वयं अपने बलबूते पर देवासुर संग्राम लड़े थे। परन्तु तुम्हारी बात दूसरी है। तुम राज्य में रहते हुए दुर्बल रहे हो तुम्हारी प्रजा ही तुम्हारे विरुद्ध उठ खड़ी हुई है। तुम जैसे अयोग्य शासक के लिए कोई देवता भी सहायता के लिए नहीं आयेगा।

"भाई-भाई की वात तो मैंने अपने विचार से कही है। तुम दोनों में मेरे लिए कुछ अन्तर नहीं है। वह अपने नाना की परम्परा चलायेगा अथवा नहीं, कहा नहीं जा सकता। हाँ, तुमने देवताओं की परम्परा नहीं चलायी। तुमने देवता और असुर में भेदभाव नहीं रखा। अब तुम किस आधार पर देवताओं से सहायता माँग सकते हो अथवा मेरी सहानुभूति के पात्र हो?"

: 5 :

कुवेर को पिता की एक बात मन में लगी थी। वह यह कि उसके शासन में दोप था। इस अवस्था में वह इन्द्र के पास सहायता लेने के लिए नहीं पहुँचा। वह उसी रात लंका पहुँचा और अपने परिवार को पुष्पक विमान में चढ़ाकर पिता के आश्रम में आ गया। उसने अपने लिए नया निवासस्थान देवलोक की सीमा पर कैलाश के चरणों में बना लिया और वहाँ जाकर रहने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लंका में अगले दिन नियत समय पर प्रहस्त कुवेर का निर्णय जानने के लिए राजप्रासाद में पहुँचा तो प्रासाद को खाली देख समझ गया कि कुवेर लंका का राज्य अपने भाई दशग्रीव के लिए छोड़ गया है।

दशग्रीव रावण ने लंका पर अधिकार कर लिया तो उसकी माँ के पक्ष के सभी भाई-वान्धव, राक्षस समाज और प्रवृति के लोग वहाँ आकर बसने लगे।

जव रावण राक्षसों सहित वहाँ रहने लगा तो राक्षसों ने उसका अभिपेक कर उसको राक्षसराज की उपाधि से विभूपित कर दिया। रावण लंकाधिपति बन, शक्ति संचय करने लगा। माल्यवान इत्यादि राजाओं के काल में राक्षसों का व्यवहार अत्यन्त उच्छृंखल हो चुका था और पाताल देश में रहते हुए तो उन्होंने असभ्यता और अधर्माचरण ही स्वीकार कर लिया था। अव शक्ति संचित होने पर अपने आस-पास के लोगों एवं राज्यों को वे कप्ट पहुँचाने लगे।

सुर स्वभाव अथवा दैवी स्वभाव के विपरीत आचरण करने वाले को असुर कहते हैं। भले ही दूसरों को उनके व्यवहार से कितना भी कप्ट हो। जो लोग अपने इन्द्रीय-सुखों को सर्वोपरि मानते हैं उन्हें असुर कहा जाता है। धर्म-मर्यादा छोड़ने के कारण ही इन राक्षसों को असुर कहा जाने लगा था। राक्षस जाति शक्ति संचय के साथ भयंकर उपद्रवकारी हो गई और जिन-जिनके साथ इन राक्षसों का संघर्प हुआ वही दु:खी हो त्राहि-त्राहि करने लगा।

जहाँ धन-सम्पद दिखाई दिया, राक्षसों ने उठा लिया। जहाँ सुन्दर सुखद स्थान देखा, उस पर अधिकार कर लिया। जहाँ कोई लुभायमान वस्तु दिखाई दी, उन्होंने वलपूर्वक ले ली। यहाँ तक कि किसी भी स्थान पर सुन्दर स्त्री दिखी तो उसका अपहरण कर लिया।

दशग्रीव अपने नाना के जाति वालों की सहायता से ही लंका का राज्य पा सका था। अत: पहला काम जो उसने किया, वह राक्षसों और दानवों के अतिरिक्त अन्य सवको वहाँ से चले जाने का आदेश दे दिया। दक्षिण भारत के मानव अल्पसंख्या में ही वहाँ आकर वसे थे। वे लंका छोड़ने लगे तो उनकी धन-दौलत और स्त्री वर्ग छीन लिया गया। यह कहा गया कि यह देश की विभूति हैं। इनको वे देश से वाहर जाने नहीं देंगे।

जव लंका में राक्षस राज्य स्थापित हो गया, तव राक्षस अपना पूर्व इतिहास और उसकी प्रभुता स्मरण कर अभिमान से फूलने लगे।

दशग्रीव ने अपने राज्य का वल वढ़ाने के लिए सभी जातीयों के असुरों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 089.9143/GUR-S
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सम्वन्ध बनाया। अपनी बहिन शूर्पणखा का विवाह काल दानव के पुत्र से कर दिया। इस सम्वन्ध से भूतल पर वचे-खुचे दानव भी लंका में एकत्रित होने लगे।

दशग्रीव ने अपना विवाह दैत्यों के परिवार में मय की पुत्री, देवलोक में शिक्षित मन्दोदरी से किया। लंका में अति सुन्दर और सुखद भवन थे। वायुमण्डल नम होने के कारण धूल रहित था। मानवों व अन्य असभ्य जातियों को सताने के वाद छुपने को पर्याप्त स्थान थे। इस कारण मन्दोदरी के दोनों भाई भी लंका में ही रहने लगे।

दशग्रीव ने अपने भाई कुम्भकर्ण और विभीषण दोनों का विवाह भी अन्य शिष्ट राक्षस परिवारों में कर दिया।

दशग्रीव अव विश्व-विजय के स्वप्न देखने लगा। इस समय तक लाखों की संख्या में राक्षस पाताल देश से लंका राज्य में और भारत के दक्षिण पार्श्व में आकर रहने लगे थे। वे लूटमार मचाते हुए कभी-कभी विन्ध्याचल पर्वत तक चले जाते थे।

इस वात को मन्दोदरी का भाई मायावी पसन्द नहीं करता था। वह चाहता था कि सवसे पहले देवलोक पर आक्रमण कर उसे विजय किया जाये। अत: उसने एक दिन दशग्रीव से कहा, "श्रीमान्! यदि देवलोक विजय करना है तो लंका और देवलोक के मध्यवर्ती क्षेत्रों से शत्रुता नहीं करनी चाहिये।"

"मैं तो पूर्ण भू-मण्डल पर राक्षसराज स्थापित करना चाहता हूँ।"

"यह ठीक है। परन्तु महाराज, यह नीति है कि सुगमता से पराजित होने वाले को पहले विजय करना चाहिये। उसकी शक्ति को आत्मसात करने के पश्चात प्रवल राज्य पर आक्रमण करना ठीक रहेगा।"

"कौन दुर्वल राज्य है और कौन प्रवल राज्य है।?"

"विन्ध्याचल के पार कौशल राज्य इस समय महान् वल का स्वामी है। उससे टक्कर लेने से पहले अपनी शक्ति वढ़ानी चाहिये। कम-से-कम उसे शत्रु पक्ष में जाने का अवसर नहीं देना चाहिये।

"देवता दुर्वल हो गए हैं, वे अव परिश्रम नहीं कर सकते। वे कामी हो रहे हैं, दिन-रात भोग-विलास में रत रहते हैं और उनमें अपने देवता होने का अभिमान आ रहा है। इनके विपरीत उत्तरी भारत के आर्य लोग एक निश्चित धर्म-व्यवस्था के अनुसार व्यवहार करते हैं। व्रह्मचारी अपने व्रह्मचर्य का पालन करते हैं व साधारण गृहस्थ ऋषियों की वनाई व्यवस्था का पालन करते हुए वलवान और

Central Library Guru... 163005
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बुद्धिमान बन रहे हैं।

इसके अतिरिक्त देवलोक स्वर्ग समान सुन्दर देश है। उस पर राज्य पा जाना अत्यन्त सौभाग्य की बात होगी।"

मायावी ने देवलोक के कुछ स्थानों का वर्णन इतनी लुभायमान भापा में किया कि दशग्रीव के मन में यह लालसा उत्पन्न हो गयी कि देवलोक विजय होना चाहिए। आक्रमण से पूर्व वह इसे एक बार देखना चाहता था।

एक दिन उसने अपने नाना वाला विमान लिया और देवलोक के दर्शन के लिये उड़ चला ।

अपने पिता के आश्रम के ऊपर से उड़ान भरता हुआ वह अमरावती, यमपुरी, कैलाश पर महादेव शिवजी के निवास-स्थान की शोभा देखता हुआ घूम रहा था कि कैलाश पर्वत के चरणों में एक वहुत ही सुन्दर भवनों वाली नगरी को देख वह उस पर मोहित हो गया। उसने अपना विमान एक निर्जन स्थान पर उतारा और उस सुन्दर नगर की शोभा देखने लगा।

विशाल उद्यान, सुन्दर पुष्करणियाँ, पुष्प-वाटिकाएँ, भिन्न-भिन्न प्रकार के मनुष्यों से चहल-पहल युक्त मार्ग और ऊँची-ऊँची अट्टालिकायें देखता हुआ दशग्रीव घूम रहा था कि उसे एक उद्यान में कुछ ललनायें मधुर संगीत और नृत्य करती दिखायी दे गयीं। वह उनको देखने खड़ा हो गया। आते-जाते अन्य लोग भी उनको देखते और फिर चल देते थे। दशग्रीव तो उनके नृत्य पर इतना मुग्ध हुआ कि वहीं खड़ा रह गया।

उस स्थान से कुछ अन्तर पर एक अति विशाल उच्च भवन वना था। नृत्य-संगीत के उपरान्त सव स्त्रियाँ उसी अट्टालिका की ओर जाने लगीं तो दशग्रीव ने आगे वढ़ एक युवती से पूछ लिया, "यह किसका स्थान है?"

वह स्त्री विस्मय में प्रश्नकर्त्ता का मुख देखने लगी। दशग्रीव ने कह दिया, "मैं परदेशी व्यक्ति हूँ। अपने विमान में भू-मण्डल का भ्रमण कर रहा हूँ। इस कारण इस सुन्दर स्थान को देख यहाँ उतर पड़ा हूँ।"

जव दशग्रीव इस युवती से प्रश्न कर रहा था तो नृत्य करने वाली अन्य स्त्रियाँ भी वहाँ एकत्रित हो, उन दोनों की बातें सुनने लगी थीं। उस युवती ने उस स्थान का परिचय दे दिया,

"यह अल्कापुरी है। ऋपि विश्रवा के पुत्र वैश्रवण ने इसे वसाया है। वह एक समय भू-मण्डल की एक सुन्दर नगरी लंका पर राज्य करते थे। अपने पिता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदेश पाकर उन्होंने वह नगरी अपने छोटे भाई दशग्रीव रावण को दे दी और अव यहाँ इस नगरी को वसाया है।"

दशग्रीव इस नगरी पर राज्य कर इन सव सुन्दर ललनाओं को अपने रनिवास में रखने की इच्छा करने लगा। इस समय उसने पूछ लिया, "आप कौन हैं जो यहाँ अपना सौन्दर्य और लालित्य विना मूल्य विखेर रही हैं।"

उस स्त्री ने वताया, "हम इस प्रासाद में रहने वाले श्री वैश्रवण के पुत्र नलकूवर की दासियाँ हैं। हम यहाँ पर देवी रम्भा की प्रतीक्षा में खड़ी हैं।"

रम्भा! वह कौन है?"

"यहाँ की सर्वश्रेष्ठ अप्सरा है। वह महाराज नलकूवरजी की पत्नी है।"

"क्या मैं भी उसके दशर्न कर सकूँगा?"

"उसके आने पर सव लोग उसे देखते हैं। आप भी देख सकेंगे। परन्तु महाराज आप ने कहा है कि आप विमानचारी हैं, अत: आप अवश्य ही कोई देवता होंगे। आप अपना परिचय दीजिये।"

दशग्रीव ने अपना परिचय दिया तो सव ललनायें उसे आदर की दृष्टि से देखने लगीं।

कुछ ही देर में एक अति सुन्दर रमणी अपनी वेणी में पाटल का फूल लगाये हुए और गले में वैजयन्ती पुष्पों की माला पहने मस्त चली आती दिखायी दी।

दशग्रीव ने उसको देखा तो मंत्रमुग्ध खड़ा रह गया। जव वह समीप आ गई तो दशग्रीव ने आगे वढ़ हाथ जोड़ प्रणाम किया और अपना परिचय दिया। तदनन्तर कहा, "मुझे ज्ञात हुआ है कि आप रम्भा हैं।"

हाँ कहते हुए रम्भा ने भी प्रणाम किया और वोली "आपका परिचय मिला, मैं आपकी पतोहू हूँ। आपके भाई वैश्रवण के पुत्र की पत्नी।"

"मैं आपसे पृथक् में एक वात कहना चाहता हूँ।"

"तो भीतर आइये। आपके भाई के लड़के आपसे परिचय प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न होंगे।"

"भीतर जाने से पहले मैं आपसे एक वात करना चाहता हूँ। इस समीप के कुंज में आइये।"

रम्भा झिझक रही थी। उसने कुछ कहा नहीं। वह खड़ी विचार करती रही।

दशग्रीव ने उसकी वाँह पकड़ आग्रह करते हुए कहा, "देवी! तनिक इधर आओ। वह सार्वजनिक स्थान है। भय मत करो। तुम्हें मैं कुछ दिखाना चाहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ।"

अनिच्छा से रम्भा घसीटी जाती हुई उस कुंज में चली गयी। दशग्रीव ने उसे अपनी वलिष्ट भुजाओं में उठाया और उधर को भागा, जिधर उसका विमान खड़ा था। वह समीप ही था। दशग्रीव ने उसे विमान में वैठाया और विमान आकाश में उड़ा ले गया।

: 6 :

रम्भा को उठाकर ले जाने का समाचार पूर्ण देवलोक में फैल गया। कुवेर ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के पास पहुँचा और रम्भा के अपहरण का पूर्ण वृत्तान्त वताकर कहने लगा, "इसका प्रतिकार होना चाहिये।"

ब्रह्मा ने मुस्कराते हुए पूछा, "धनाध्यक्ष! तुम लंका छोड़ कर किसलिये चले आए थे?"

"पिताजी कहते थे कि राज्य जैसी तुच्छ वस्तु के लिए भाई-भाई में युद्ध ठीक नहीं होगा।"

"और अव एक अप्सरा के लिए देवलोक में आग लगाना चाहते हो?"

"परन्तु भगवन्! यह विपय अव देवलोक के नियमोपनियमों को हो गया है। देवलोक में स्त्रियों पर वलात्कार नहीं होता।"

"देवता इस घटना पर लंकाधिपति से युद्ध नहीं करेंगे। इस पर भी मैं चाहता हूँ कि देवताओं को अपने भविष्य पर विचार करना चाहिए। एक देव-सभा वुलायी जाये और उसमें देवलोक की वर्तमान स्थिति पर विचार किया जाये।"

"तो महाराज! आप हमारे पुरोहित हैं। आप वुलाइये।"

"ठीक है। मैं देव-सभा इन्द्र के प्रासाद में वुलाऊँगा। तुम भी आना। अपने साथ हुए अन्याय का वर्णन करना।"

सभा में इन्द्र ने पूछ लिया, "क्या दशग्रीव आपके राज्य में सेना लेकर आया था?"

"नहीं... ! वह अपने विमान में अकेला आया था।" कुवेर ने कहा।

"आपके पास भी तो विमान था। आपने उसका पीछा क्यों नहीं किया? यदि आप या नलकूवर विमान लेकर उसका पीछा करता तो उसे लंका पहुँचने से पहले पकड़ा जा सकता था। आपके पास पुष्पक विमान था जो उससे कई गुना अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गति से उड़ सकता है। देखिये, धनाध्यक्षजी! आप अपनी मूर्खतापूर्ण भूलों के लिए देवलोक को युद्ध में घसीटना चाहते हैं। यह नहीं होगा।"

इन्द्र के निराशाजनक कथन से सब देवता निरुत्साह हो रहे थे। ब्रह्मा यह जानते थे कि वास्तविकता क्या थी। वह बोले "वास्तविक बात यह है कि इस समय देवताओं में कोई नहीं जो दशग्रीव से युद्ध कर सके। कुबेर क्या और इन्द्र क्या, सब अपनी दुर्बलता को छुपाने के लिए युक्तियाँ दे रहे हैं। ये वास्तव में युक्तियाँ नहीं हैं, प्रत्युत अपनी दुर्बलता छुपाने के लिए कुतर्क हैं।

"एक काल था जब देवता अपने को भू-मण्डल में धर्म और न्याय के संरक्षक मानते थे। तब देव और मानव-समाज एक था। नियम सभी के लिए एक समान थे और उनका उल्लंघन सामाजिक अधिकारों का हनन माना जाता था। देवराज और उसकी सेना अधिकारों का उल्लंघन करने वालों को तुरन्त दण्ड देते थे व ऐसा प्रबन्ध करते थे कि भविष्य में पुन: ऐसा न हो।

"अब तो तुम्हारे अपने देश में एक पापाचारी आकर अपहरण कर चला जाता है और तुम उसको दण्ड देने की सामर्थ्य नहीं रखते। तुम लोग समस्त विश्व में पूजे जाते थे और अब अपनी असमर्थता को प्रकट करने के लिए एक-दूसरे को कोस रहे हो।

"मैं वृद्ध हो रहा हूँ और तुम सबके दोषों को जानता हूँ। तुम लोग आलसी व विलासी हो रहे हो। इसलिए जानता हूँ कि तुम अब दशग्रीव का कुछ नहीं बिगाड़ सकते। तुम्हारी रक्षा तो अब कोई श्रेष्ठ मानव ही कर सकेगा। इस कारण अब तुम कुछ ऐसा प्रयत्न करो कि जिससे कोई मानव तुम्हारी रक्षा करने को तैयार हो।

"मुझे यह पता चला कि कौशल राज्य की राजधानी अयोध्या में एक यज्ञ किया जा रहा है। वहाँ का राजा दशरथ पुत्र की कामना करता हुआ पुत्रेष्टि-यज्ञ कर रहा है। राजा दशरथ इस समय विश्व में सबसे समर्थ राजा हैं। वह देवताओं की सहायता के लिए कई युद्ध कर के जीत चुके हैं। उनकी सेना में दशग्रीव से युद्ध का सामर्थ्य हैं परन्तु वह स्वयं अधेड़ हो चुके हैं और सन्तान न होने से हताश हैं। यहाँ राजवैद्य अश्विनीकुमार बैठे हैं। उनको चाहिए कि महाराज दशरथ की इसमें सहायता कर दें।

"वे यहाँ से राजा व रानियों के लिए विशेष औषध बनाकर भेजें तो वीर राजा के घर में जो सन्तान जन्म ले वह अति सुन्दर और बलवान शरीरवाली तथा मेधावी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और साहसी हो। यदि वे ऐसा प्रबन्ध कर दें तो कोई परमात्मा की श्रेष्ठ विभूति से युक्त आत्मा उस कलेवर में चली जायेगी। समय अवश्य लगेगा परन्तु वीर राजा की वह सन्तान निश्चय ही धर्म स्थापना के लिए इस असुर संस्कृति के पोपक दशग्रीव का वध कर, भू-भार को हल्का कर सकेगी।"

ब्रह्मा की इस सम्मति पर कार्य करने के लिए देवता लोग परस्पर परामर्श करने लगे और अश्विनीकुमारों को औषधपाक तैयार करने के लिए कह दिया गया।

यह समाचार मुनि विश्रवा के आश्रम में भी पहुँचा कि देवता लोग दशग्रीव से अधिक शक्तिशाली मानव के जन्म की योजना बना रहे हैं जो उसके भय को समाप्त कर सके व आवश्यकता पड़ने पर उसका वध भी किया जा सके। इस समाचार से दशग्रीव की माता कैकसी को भय लग गया। उसने अपने पति से कहा, "महाराज! क्या देवताओं की योजना सफल होगी?"

"अवश्य होनी चाहिए। क्यों न हो?"

"इस कारण कि दशग्रीव आपका पुत्र है। ब्रह्मलोक से वेद विद्या में शिक्षित है। कुशल योद्धा का प्रमाण-पत्र प्राप्त है और लाखों सैनिक उसके संकेत मात्र पर लड़ जाने वाले उसके पास हैं?"

"इस पर भी देवी! वह पापी है और पापी का विनाश होगा ही।"

"तो कुछ उपाय नहीं है"

"उपाय तो है। कोई पाप नहीं जिसका कि प्रायश्चित न हो। परन्तु वह निरंकुश है। मेरी मानेगा नहीं, मैं अपना अपमान नहीं करवाना चाहता।"

कैकसी निराश नहीं हुई। इन दिनों कुवेर आश्रम में ही रह रहा था। अल्कापुरी में नलकूबर राज्य करता था। अत: कैकसी कुवेर के पास पहुँची और बोली "कुवेर! मुझे ज्ञात हुआ है कि देवता व ब्रह्माजी दशग्रीव के विरुद्ध हो गए हैं। उन्होंने ऐसा आयोजन करने का निश्चय किया है कि महाराज दशरथ के घर में तुम्हारे भाई दशग्रीव से अधिक विद्वान और शक्तिशाली योद्धा उत्पन्न हो, जो दशग्रीव को समाप्त कर सके।"

"हाँ, माताजी! उसने शिष्टजनों के व्यवहार का उल्लंघन कर दिया है। वह युवा है, बलवान है और अमिट साहस रखने वाला है परन्तु अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर पापाचार कर रहा है। किसी गुरुजन की मानता नहीं। बहू-बेटी का नाता नहीं मानता। इस कारण उसके पापों का निराकरण करने के लिए, गुणों में उससे श्रेष्ठ वीर योद्धा तैयार करने का आयोजन है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह ठीक है। उसको ऐसा करना नहीं चाहिए। परन्तु मैं यह चाहती हूँ कि तुम बड़े हो, विद्वान, बुद्धिमान, दयालु और परिवार वालों से स्नेह रखने वाले हो। तुम्हें अपने परिवार के भूल कर रहे सदस्य को समझाना चाहिए। मेरी यह कामना है कि तुम उसे अपने व्यवहार को सुधारने की सीख दो।"

"परन्तु माताजी! उसने आज तक मेरी मानी है क्या जो अव मानेगा?"

"नहीं मानेगा तो मैं कोई अन्य विधि सोचुंगी। तुम्हारा तो कल्याण होगा क्योंकि तुम अपने परिवार के एक प्राणी को दूषित मार्ग पर चलना छोड़ देने की सम्मति दोगे और शांति का प्रयास तो करोगे।"

कुवेर मान गया कि वह इस दिशा में यत्न करेगा। उसने अगले ही दिन एक दूत अपने एक पत्र के साथ रावण के पास भेज दिया।

वह दूत कुवेर का पत्र लेकर लंका पहुँचा और वहाँ पहले विभीषण के पास गया। विभीषण को उसने वहाँ आने का अपना उद्देश्य वताया। विभीषण दूत को लेकर रावण के प्रासाद में जा पहुँचा। सूचना भेजने पर रावण ने इनको अपनी भरी सभा में ही वुला लिया।

कुवेर का दूत विभीषण के साथ सभा में पहुँचा। विभीषण ने कहा, "महाराज! यह हमारे वड़े भाई धनाध्यक्ष कुवेर का भेजा हुआ दूत है। यह उनका एक सन्देश लेकर आया है। मैं इसे यहाँ ले आया हूँ जिससे यह स्वयं वह सन्देश आपको दे सके।"

रावण ने भाई को वैठने के लिए भी नहीं कहा। उसने तुरन्त दूत को सम्वोधन कर कहा, "हाँ, वताओ! वह क्या कहता है?"

"महाराज!" दूत ने कहा, "मैं आपके वड़े भाई महाराज धनाध्यक्ष कुवेर का दूत हूँ। मुझे आज्ञा हुई है कि मैं आपसे यह निवेदन करूँ कि आपने जव से राज्य सम्भाला है तव से अनेक व्यक्तियों के साथ अत्याचार किया है। आपने अगणित स्त्रियों से वलात्कार किया है और इस समय आपने लंका से लेकर विन्ध्याचल पर्यन्त सामान्य प्रजा को भी दु:खी कर रखा है। धनाध्यक्ष महाराज का यह कहना है कि आप अपने आपको सुधारें। पिता जी की प्रेरणा से यह राज्य आपके वड़े भाई ने आपको दिया है। इस कारण उनका अधिकार है कि आपको कहें कि आप अपने व्यवहार में सुधार करें।"

"और यदि मैं उनकी वात न मानूँ तो?"

"तो देवता लोग यह यत्न कर रहे हैं कि न केवल आपका जीवन समाप्त कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दिया जाये, वरन् यह भी कि आपका नाम अनन्त काल तक भले लोगों में तिरस्कार और घृणा का पात्र बना रहे।"

"तो यह तुम मुझे शाप दे रहे हो?"

"महाराज! इसमें मैं कहाँ से आ गया? मैं तो केवल एक दूत होने के नाते वही कह रहा हूँ जो कुछ आपके बड़े भाई ने आपको कहने के लिए मुझे भेजा है।"

"बहुत धृष्टता कर रहे हो तुम! इसको हम सहन नहीं कर सकते। इस व्यक्ति का सिर शरीर से पृथक कर दो।"

पूर्व इसके कि कोई समझे कि क्या हो रहा है, प्रहस्त ने तुरन्त अपना खड्ग निकाला और दूत का सिर काट डाला।

सभी राक्षस लंकाधिपति रावण की जय-जयकार कर उठे और विभीषण एक भी शब्द अधिक कहे बिना वहाँ से चला गया।

कुछ दिन पश्चात दूत का सिर एक कपड़े के थैले में लिपटा हुआ धनाध्यक्ष के निवास-स्थान पर आ गिरा। कुबेर दूत के सिर को पहचान सब समझ गया। उस सिर को लेकर कुबेर अपनी विमाता के पास जा पहुँचा और सिर दिखाकर उसने बता दिया कि यह उस दूत का सिर है जिसे मैंने आपके कहे अनुसार सन्देश देकर दशग्रीव के पास भेजा था।

कैकसी चुप कर रही।

: 7 :

इस दूत की हत्या के उपरान्त रावण की सभा में इस कृत्य की प्रतिक्रिया पर विचार होने लगा। प्रहस्त का कहना था "महाराज! देवता इसका प्रतिशोध लेंगे।"

"वे नपुंसक मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।"

"वे लंका पर आक्रमण तो कर सकते हैं।"

"अब उनमें विष्णु जैसा शौर्यवान कोई नहीं।"

"महाराज! मेरा यह कहना है कि युद्ध अपने राज्य में नहीं होना चाहिए। शत्रु के घर में जाकर लड़ना ठीक है। इस कारण देवलोक पर आक्रमण कर देना चाहिए। युद्ध तो अब होगा। इस कारण मेरी सम्मति यह है कि एका-एक देवलोक पर आक्रमण कर दिया जाये।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तो रावण के मन की बात थी। अत: उसने कहा, "तो तैयारी कर लो।"

बस फिर क्या था। रण-भेरी बजा दी गयी और काले बादलों की भाँति कृष्ण वर्ण राक्षसों की अपार सेना देवलोक की ओर उमड़ पड़ी। रावण अपने लड़के मेघनाथ को सेनानायक बना कर दो मास में देवलोक जा पहुँचा।

सबसे पहले अल्कापुरी पर ही आक्रमण किया गया। नलकूबर ने डटकर आक्रमण का विरोध किया, परन्तु रावण की सेना बहुत अधिक थी और लड़ने का अभ्यास रखती थी। अल्कापुरी की सेना को लड़ने का अभ्यास नहीं था। जब से कुबेर ने राज्य स्थापित किया था लोग शान्ति और सुख का जीवन व्यतीत करते रहे थे।

उसकी सेना राक्षस-सेना के सामने टिक नहीं सकी। नलकूबर स्वयं लड़ने के लिए आया, परन्तु घायल हो अचेत हुआ तो उसके सेवक उसे उठाकर ले गए। रावण ने पूर्ण नगर को लूटा। वहाँ के स्त्री-वर्ग को अपने सैनिकों के हवाले कर दिया और कुबेर के पुष्पक विमान को अपने अधिकार में ले लिया।

अल्कापुरी के उपरान्त कैलाश पर आक्रमण किया गया। यह महादेव शिव का देश था। शिवजी के गण लड़ने के लिए निकल आए। घमासान युद्ध होने लगा तो रावण को समझ में आ गया कि वह शिवजी पर विजय प्राप्त नहीं कर सकेगा। इस कारण रावण ने ही सन्धि का प्रस्ताव किया।

शिवजी ने भी सोचा कि और अधिक रक्तपात की क्या आवश्यकता है। देवी पार्वती को भी सुकेश के वंशज पर दया आ गयी। साथ ही शिवजी को देवताओं पर रोष था कि वे युद्ध में उनके सहयोग के लिए नहीं आए। अत: सन्धि कर वह शान्त हो गये।

इस प्रकार बारी-बारी से भिन्न-भिन्न देव-राज्यों को ध्वस्त करता हुआ यम, वरुण और अन्य देवताओं पर विजय प्राप्त कर दशग्रीव ने अमरावती पर धावा बोल दिया।

इन्द्र किसी अन्य देवता की सहायता के लिए नहीं निकला था अत: अन्य किसी देवता ने भी अपनी सेना इन्द्रलोक की रक्षा के लिए नहीं भेजी। इस पर भी अति भयंकर संग्राम हुआ। राक्षस सेना की अपार क्षति हुई और यदि युद्ध कुछ दिन और चल जाता तो वे पराजित हो जाते परन्तु मेघनाथ ने धोखे से इन्द्र को बन्दी बना लिया।

इन्द्र के बन्दी बना लेने पर जहाँ राक्षसों के नेता नाच-नाचकर परस्पर गले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलने लगे वहाँ देवताओं में मुर्दनी छा गयी। पूर्ण देवलोक के विजय करने पर भी रावण अपना राज्य वहाँ स्थापित नहीं कर सका। देवलोक शीत-प्रधान देश था। इन्द्र दिव्याग्नि का रहस्य जानता था और उसने ऐसा प्रवन्ध किया था जिससे अमरावती के निवासी नगरों और मकानों को रहने के योग्य गर्म रखते थे। इसका रहस्य रावण नहीं जानता था। इन्द्र के वन्दी होने पर सम्पूर्ण देवलोक शीत से ठिठुरने लगा। सागर के मध्य में एक टापू पर रहने वाले राक्षसों को इतनी भीपण शीत का अभ्यास नहीं था। अधिकतर सैनिकों को शीत रोगों ने जकड़ लिया और वे छुट्टि लेकर लौटने लगे। रावण ने अपनी सेना के सेनापति मेघनाथ से सम्मति की तो वह भी वहाँ से लौट चलने के लिए कहने लगा। वन्दी इन्द्र को साथ ले वह लौटने की सोच ही रहा था कि ब्रह्मा समाचार पाकर वहाँ चले आये और रावण तथा इन्द्र में सन्धि करवा दी। परस्पर मैत्री रखने के वचन हो गये और इन्द्र ने अपनी मुक्ति के मूल्य में कई दिव्यास्त्र व एक दिव्य शक्ति भी मेघनाथ को दी। यह दिव्य शक्ति जव छोड़ी जाती थी तो जो सामने वाले समीप हों तो तुरन्त उनकी मृत्यु हो जाती थी। अन्तर पर होने पर वे मूर्छित हो जाते थे और यदि शीघ्र ही चिकित्सा न हो तो भी उनकी मृत्यु हो जाती थी।

अमरावती पर आक्रमण में रावण की सेना की वहुत हानि हुई थी। राक्षस वहुत अधिक संख्या में मारे गए थे।

देवलोक का अपार धन लूटकर रावण लंका को चल पड़ा।

: 8 :

रावण देवलोक की विजय से मदोन्मत हो रहा था। इस कारण वह मन में विचार करने लगा कि आर्यवर्त (वर्तमान भारत) की विजय कहाँ से आरम्भ करे! विन्ध्याचल पर्वत तक तो उसके राक्षस लूट-मार और वरवादी मचाते रहते थे।

विन्ध्याचल से उत्तर की ओर विन्ध्य प्रदेश में नर्मदा के किनारे महिष्मति नगरी पर उसकी दृष्टि गयी। उसने सुन रखा था कि महिष्मति अमरावती से भी अधिक सुन्दर नगरी है। वहाँ की धन-सम्पदा तो आर्यवर्त की सव नगरियों से अधिक है। इस वात पर विचार करते ही उसके मुख से लार टपकने लगी। उसने कुवेर से विजित पुष्पक विमान उधर ही घुमा दिया।

विशाल पुष्पक विमान में उसके साथ सेना के कई अधिकारी और कई सहस्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैनिक थे। रावण का विचार था कि विन्ध्य राज्य को जीतने के लिए इतने सैनिक पर्याप्त हैं। वास्तव में वह तो अपनी पूर्व विजयों का भय दिखाकर ही महिष्मति नगरी के महाराज अर्जुन से कर प्राप्त करना चाहता था।

उसने अपना विमान नर्मदा नदी के तट पर उतार दिया और वहाँ से अपना एक दूत महिष्मति पुरी में राजा के प्रासाद पर भेज दिया। यह दूत मारीच था। उसने राजप्रासाद के द्वार पर जाकर महाराज से मिलने का अनुरोध किया।

द्वारपाल का कहना था, "महाराज इस समय नहीं मिल सकते।"

"क्यों?"

"वह अपनी रानियों के साथ जल-विहार कर रहे हैं। इस कारण आज वह नहीं मिलेंगे।"

"तो उनको सन्देश भिजवा दो।"

"क्या सन्देश है?"

"लंका-नरेश रावण जिसने देवलोक को विजय किया है, नर्मदा के किनारे ठहरे हुए हैं। वह चाहते हैं कि विन्ध्य प्रदेश के राजा तुरन्त उनसे आकर मिलें और भेट-पूजा से उनका सत्कार करें।"

द्वारपाल ने कहा, "सन्देश अभी भिजवा देता हूँ, परन्तु आज उनसे भेंट की सम्भावना नहीं है।"

इस पर मारीच ने आवेश में कह दिया, "यदि आज भेंट नहीं हुई तो हम आज इस सुन्दर नगरी को लूट कर, यहाँ पर अपना राज्य स्थापित कर लेंगे।"

मारीच द्वारपाल को इस प्रकार डरा-धमकाकर अपने सेना-शिविर में लौट आया।

मारीच अभी शिविर में पहुँच कर रावण को राजा के रानियों के साथ जल-विहार करने की वात वता रहा था और रावण इत्यादि उसके जल-विहार की कथा को सुन ही रहे थे कि नर्मदा का जल चढ़ने लगा। देखते-ही-देखते, जहाँ वे लोग ठहरे हुए थे, वह स्थान पानी से घिर गया। नदी में सामान्य वाढ़ आयी समझ, रावण कोई ऊँचा स्थान ढूँढ़ने लगा।

रावण और उसके सभी साथी देख रहे थे कि नर्मदा का जल वहने से रुक गया है, मानो, कहीं वाँध लगा दिया गया हो। चारों ओर जल-थल हो गया था। आधी घड़ी में ही जल इतना अधिक हो गया कि वे तैरने लगे। उनके पाँव भूमि से नहीं लगते थे। विमान में जल भर गया और वह उड़ने के योग्य नहीं रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावण की सेना डूबने लगी थी। भयभीत सैनिक जिधर जिसको समझ आया, भाग खड़े हुए और अपनी-अपनी जान बचाने के लिए समीप की पहाड़ियों की ओर तैर कर जाने लगे थे। रावण और मारीच भी तैरते हुए जान बचाने की चिन्ता में थे कि नौकाओं में राजा अर्जुन के सुभट्ट आये और रावण तथा मारीच को बन्दी बनाकर राजप्रासाद में ले गये।

महिष्मति पुरी और राजप्रासाद एक पहाड़ी पर स्थित था। नगरी के लोग नगर के बाहर आ राक्षसों के तैर-तैर कर जान बचाने का दृश्य देख रहे थे। जो कोई राक्षस तट पर पहुँच पाता था, उसे पकड़ कर बन्दी बना लिया जाता था।

रावण और मारीच को बन्दी बनाकर राजप्रासाद में लाया गया तो वही द्वारपाल जिसे मारीच सन्देश देकर गया था, अपने स्थान द्वार पर खड़ा मिला। उसने मारीच को झुककर प्रणाम किया और व्यंग्य से मुस्कराता रहा।

मारीच लज्जा से गरदन झुकाये समीप से निकल गया। रावण उसके आगे-आगे था। दोनों को कारागार में बन्दी बनाकर रखा गया।

महाराज अर्जुन से भेंट अगले दिन ही हुई। दोनों बन्दियों को राज्य-सभा में उपस्थित किया गया। जब दोनों बन्दी सामने उपस्थित हुए तो राजा ने लाने वाले से पूछा, "ये कौन हैं?"

"महाराज! कल ये अपने साथ दो सहस्त्र के लगभग सैनिकों को एक वृहतकाय विमान में लिए हुए नर्मदा के किनारे पर उतरे थे। इनमें जो यह कुछ छोटे कद का व्यक्ति है, राजप्रासाद के बाहर द्वारपाल से कहने आया था कि वह लंकापति रावण का दूत है। रावण की आज्ञा से वह आया है, और रावण चाहता है कि महाराज तुरन्त उसके पास भेंट-पूजा लेकर पहुँचें। यदि नहीं पहुँचेंगे तो ये पुरी पर आक्रमण कर देंगे। पुरी को लूट और यहाँ के राजा को बन्दी बना अपने साथ ले जायेंगे।"

"तो तुम लंकापति हो?" राजा ने दशग्रीव से पूछा।

दशग्रीव अपराधियों की भाँति सामने खड़ा क्रोध से लाल-पीला हो रहा था। परन्तु उसके हाथ पीठ के पीछे सुदृढ़ रस्सों से बँधे हुए थे। विवश उसने कहा, "हाँ।"

"क्या प्रमाण है?"

"नदी के किनारे खड़ा इन्द्र का पुष्पक विमान जो देवलोक की विजय पर मुझे मिला है। उसमें ही इन्द्र से प्राप्त कर की वस्तुएँ एवं कर की राशी भी है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो इन्द्र के उस खिलौने को लूट कर तुम समझते हो कि तुम्हारा अधिकार हो गया है कि सबसे भेंट-पूजा प्राप्त करो?"

रावण चुप रहा।

"हम चाहें तो तुम्हारे विमान को आधे पल में फूँककर भस्म कर सकते हैं। हम तो तुम्हारे सब साथियों को वहीं अग्नि बाण से फूँक भस्म कर सकते थे परन्तु हमने समझा कि तुम्हारा यह खिलौना टूट गया तो तुम रोने लगोगे और यदि तुम सबको मार डाला तो तुमको दण्ड नहीं मिलेगा। इस कारण हमने अपने किंचित् मात्र प्रयत्न से तुम्हें बन्दी बनाना ही उचित समझा है।"

"तो यह आपने हमें बन्दी बनाया है क्या? यह तो नदी की बाढ़ ने हमें विवश कर दिया था।"

"नहीं दशग्रीव! यह हमारे कुशल अभियन्ताओं की योजना और सैनिकों की की कार्यकुशलता थी। उन्होंने नदी को बहने से रोक दिया था। वे चाहते तो तुम्हे डूबा कर मार सकते थे परन्तु हम तुम्हें इस प्रकार अपने सामने बन्दी बना खड़ा देखना चाहते थे।"

"परन्तु वहाँ तो कोई नहीं था, आपने नदी का प्रवाह कैसे रोका?"

"उसे रोकने के लिए हमें जाने की आवश्यकता नहीं, हमारे संकेत मात्र से हमारे उपकरण स्वयं कार्य करते हैं। हमारे उपकरण ही मेरे हाथ हैं। इनकी सहायता से हम सहस्त्रबाहू हैं। तुम्हे मालूम होना चाहिए था कि राजा अर्जुन सहस्त्रबाहू है। इस राज्य की ओर आँख भी उठाने वाला पृथ्वी से उठ सकता है। मेरी यही बाहें तुम्हारे जैसे स्वर्ग विजेता को स्वर्गवासी बना सकती हैं।

"सुनाओ, कल रात और आज प्रातः खाने-पीने को कुछ मिला है अथवा नहीं?"

रावण ने कुछ उत्तर नहीं दिया। मारीच बोल पड़ा, "श्रीमान! हम भी एक विस्तृत देश के राजा हैं। हमने अपने शौर्य से देवलोक को विजय किया है और हम आशा करते हैं कि हमारे साथ राजाओं का-सा व्यवहार किया जाये।"

"ठीक है। आप जैसे श्रीमानों के साथ वही व्यवहार करना चाहिए जो आप हमारे साथ करना चाहते थे। आपको तो बन्दी बनाकर रखा जाना चाहिए, जब तक कि आपके राज्य से हमें कर न प्राप्त हो।"

"कितनी धन-राशि चाहिए?"

"सात कोटि स्वर्ण मुद्रा और लिखित क्षमा-याचिका। उस याचिका में यह शर्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कि राक्षस पुन: विन्ध्याचल पार कर इस राज्य में पाँव नहीं रखेंगे।"

"यह हम नहीं देंगे। हमारी सेना के सेनाध्यक्ष राजकुमार इन्द्रजीत मेघनाथ इधर से ही लंका लौट रहे हैं और यदि उन्हें पता चल गया कि हम बन्दी हैं तो वह इस देश पर आक्रमण कर देंगे। तब यहाँ की ईंट-से-ईंट बजा दी जाएगी।"

"आने दो। वह भी आपकी भाँति पकड़ कर वन्दी वना लिया जायेगा और फिर आपके ही आगार में रखा जाएगा। तब कर की राशी दोगुनी हो जाएगी।

"देखो राजा रावण! तुम्हारे दो सहस्त्र सैनिकों में से डेढ़ सहस्त्र जल-प्लावन में डूबकर मर गये हैं और शेष वन्दी हैं। यदि पूर्ण सेना भी साथ होती तो उसके साथ भी यही होता। यदि अव तुम्हारे राजकुमार यहाँ आयेंगे तो तुम्हारा वंश ही नि:शेष हो जाएगा। अभी वंश तो चल रहा है।

"हमारी सम्मति मानो। अपने छूटने का मूल्य दे दो और चल दो।"

इसके उपरान्त वन्दियों को पुन: वन्दी-गृह में डाल दिया गया।

यह वात भू-मण्डल में विख्यात हो गयी कि लंकाधिपति को विन्ध्य प्रदेश के राजा सहस्त्रवाहू अर्जुन ने वन्दी वना रखा है। यह सूचना विश्रवा-आश्रम में भी पहुँची। कैकसी को जव यह पता चला कि रावण वन्दी वना लिया गया है तो वह अपने पति से विनय करने लगी कि उसके पुत्र को छुड़ाना चाहिए।

" उसके कार्य ही ऐसे हैं। इन घृणित कार्यों का फल तो मिलना ही था। इसमें मैं क्या कर सकता हूँ?" मुनि ने पूछा।

कैकसी जानती थी कि राजा अर्जुन मुनिजी का शिष्य रह चुका है और कभी-कभी गुरुजी से उपदेश लेने आश्रम में आया करता है। इस कारण उसने पति से कहा, "भगवन! राजा अर्जुन आपका शिष्य है। अत: आप राजा से कह कर अपने पुत्र को छुड़वा सकते हैं।"

ऋषि विश्रवा स्वयं विन्ध्य प्रदेश में गये और उनके कहने पर राजा ने धन की माँग वापस ले ली और पुन: आक्रमण न करने का लिखित वचन ले रावण आदि को मुक्त कर दिया।

: 9 :

जव मेघनाथ अपनी सेना को लेकर देवलोक से वापस लंका में पहुँचा तो अपने पिता और पुष्पक विमान को वहाँ न पहुँचा देख परेशानी अनुभव करने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने यह पता करने के लिए कि उसका पिता कहाँ रह गया है, अपने दूत चारों ओर भेजे।

दूत उस मार्ग पर खोजते हुए देवलोक की ओर चल पड़े, जिधर से मेघनाथ के पिता के आने का कार्यक्रम था। वे दूत जब विन्धयाचल क्षेत्र में पहुँचे तो उनको रावण अपने पुष्पक विमान को ठीक करते हुए मिल गया।

पुष्पक विमान जल में डूबने के कारण उड़ नहीं पा रहा था।

उसे पुन: ठीक करने में समय लगा। जब दूतों ने राजा रावण से मिलकर अपने आने का कारण बताया तो रावण ने उन दूतों को भी साथ ले लिया और विमान के ठीक होते ही सब साथियों सहित लंका में जा पहुँचा।

वहाँ रावण ने अपने अपमान और रोष का वर्णन किया तो मेघनाथ राजा अर्जुन से बदला लेने के लिए विन्ध्य प्रदेश पर आक्रमण कर देने का विचार करने लगा, परन्तु रावण ने बताया कि उसके पिता ने उसकी अर्जुन से सन्धि करा दी है और उस सन्धि से वह उसके देश पर आक्रमण करने की स्वीकृति नहीं दे सकता। इस पर भी मेघनाथ ने कहा, "पिताजी! मैं क्यों आपकी सन्धि का पालन करूँ।"

"और यदि तुमने यहाँ रहते हुए लंका की सेना द्वारा किसी देश पर आक्रमण किया तो देवता व आर्य राजा मुझे अविश्वास के योग्य मान लंका पर सम्मिलित आक्रमण कर देंगे। यह ठीक नहीं होगा।"

"परन्तु पिताजी!" अभिमान में डूबा इन्द्रजीत बोला "यह ठीक क्यों नहीं होगा? हम इनको परास्त कर विश्व विजयी हो जाएंगे।"

नहीं देवताओं और आर्य राजाओं के इकट्ठे हो जाने पर हम विजयी नहीं हो सकेंगे। तुम्हारी माया और छल इन आर्यों पर चल नहीं सकेगी। वे छल कपट की नीति समझते हैं और तुमसे अधिक मायावी हैं।"

"परन्तु पिताजी! हमें कुछ तो करना चाहिए। यदि हमने कोई समर नहीं चलाई तो हमारे सिपाही भी देवताओं के सैनिकों की भाँति भीरु, दुर्बल और प्रमादी हो जायेंगे।"

"देखो, मैंने और मारीच ने लौटते हुए मार्ग में एक योजना बनाई है। हमें गुप-चुप रह कर अपने राज्य की अग्रिम चौकियाँ विन्ध्याचल के साथ-साथ बना देनी चाहियें। हमारे सैनिक अपने गणवेश उतार कर साधारण वस्त्रों में वहाँ रहना आरम्भ कर देंगे। इक्का दुक्का मानव तो दुर्बल होते हैं उनको मार कर वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आतंक फैलाएंगे तो शेप लोग स्वयं वहाँ से उत्तर की ओर भाग जाएंगे। हमें केवल उन सैनिकों को आतंक फैलाने की शिक्षा देनी है। कोई वड़ा युद्ध अथवा आक्रमण नहीं होगा। अत: यह लंका राज्य का युद्ध नहीं होगा। हम दोशी नहीं मानें जाएंगे। यदि कभी किसी ने हमारी ओर उंगली भी उठाई तो हम नकार देंगे। जव कोई क्षेत्र जनशून्य हो जाएगा तो उस पर अपना अधिकार कर लेंगे। तव एक निर्जन स्थान को अपने राज्य में सम्मिलित करने का दोष नहीं होगा।"

"मारीच ने वताया है कि उसके साथियों ने उत्तर के दो वहुत वड़े क्षेत्र मलद और कारुप इसी प्रकार जन-शून्य कर दिए हैं।

"एक समय था कि मलद और कारुप वहुत ही सम्पन्न जनपद थे। मारीच की माता ताड़का एक तपस्वी सुकेतु की लड़की है। वह अतुल वल की स्वामिन् है। वहाँ अव ताड़का और उसके पति सुन्द, दोनों का राज्य है। नगर विध्वंस हो चुके हैं। धीरे धीरे वह स्थान निर्जन होते जा रहे हैं और जंगल में परिवर्तित हो रहे हैं।

"अव केवल वहाँ कोई विश्वामित्र मुनि ही अपने सिद्धाश्रम नाम के आश्रम में रहता है। मारीच और ताड़का, ये माँ-पुत्र दोनों नरभक्षी हैं। किसी दिन उस मुनी और उसके साथीयों को मार कर खा जाएंगे। मारीच की सम्मति है कि ऐसी ही आतंकवाद की नीति पूर्ण विन्ध्याचल और उसके समीपवर्ती ग्रामों पर चलाई जाए। उनका विचार है कि पाँच-दस वर्प में वह पूर्ण क्षेत्र जन-शून्य हो जाएगा। तव हमारे सैनिक वहाँ राक्षस राज्य स्थापित कर लेंगे।"

"परन्तु पिताजी! मार्ग में पम्पासुर पड़ता है। वह भी एक समृद्ध वन राज्य है उसके वने रहते हम विन्ध्य प्रदेश में राज्य स्थापित नहीं कर सकेंगे।"

"उसके विपय में भी मैंने एक योजना वनाई है। वह मैं चुप-चाप सम्पन्न कर लूँगा। उस राज्य का राजा वाली अति शौर्यवान् है। उसकी आँखों में इतना तेज है कि जिसकी ओर वह देखता है, उसका वल क्षीण हो जाता है।

"मैं अकेला जाकर उसे छल से वन्दी वना लाऊँगा। एक वार वह वन्दी हुआ तो पूर्ण राज्य हमारे अधीन हो जाएगा।"

इस योजना पर कार्य होने लगा। दो राक्षस सेनापति खर और दूपण नर्मदा के तट पर दण्डकारण्य में भेज दिये गए और उन्होंने वहाँ एक विस्तृत जनपद वसाना आरम्भ कर दिया और आतंक फैलाने में सक्षम सैनिक तैयार करने आरम्भ कर दिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन रावण अपने विमान पर [illegible] क्षेत्र के सागर तट की ओर गया। वह वहाँ पर घूम रहा था। वह देखना चाहता था कि वाली ने वहाँ अपने राज्य को सुदृढ़ करने के लिए क्या क्या उपाय किए हैं?

तट पर भ्रमण करते हुए रावण ने एकान्त स्थान पर वाली को ध्यानावस्थित बैठे देखा। इसे एक ईश्वर-प्रदत्त अवसर मान रावण ने वाली को वन्दी वना कर लंका ले जाने की योजना बना ली। उसने अपना विमान, जिस पर वह भ्रमण कर रहा था, वाली के ध्यान-स्थल से कुछ अन्तर पर उतारा और वहाँ से पैदल उस स्थान की ओर चल पड़ा जहाँ वाली अपने में लीन बैठा था।

वाली अभी भी चिन्तन कर रहा था। रावण धीरे-धीरे विना आवाज किए वाली की ओर जाने लगा। परन्तु वाली ने उसे देख लिया था और उसे चोरी-चोरी अपनी ओर आते देखा तो उसे सन्देह हो गया कि यह व्यक्ति किसी प्रकार की कुटिलता करना चाहता है। वाली आने वाले व्यक्ति की नीयत पर तो सन्देह कर रहा था, परन्तु नहीं जानता था कि वह क्या करना चाहता है। अत: आने वाले व्यक्ति को दवे-पाँव अपनी ओर आते देख वह आधी मूंदी आँखों से उसे देखता रहा।

रावण वाली के समीप पहुँच उसके पीछे हो लपककर उसको बाँध लेना चाहता था। वाली ने जव उसे अपने हाथ की पहुँच के भीतर आया जाना तो एकाएक घूमकर उसने रावण को पकड़कर अपनी वगल में दवा लिया।

रावण कुछ काल तक छूटने के लिए छटपटाता रहा, परन्तु वाली उससे वहुत अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ। वह उसे पकड़कर अपने राज्य की राजधानी किष्किन्धा नगरी में ले गया। वहाँ उसे वन्दी वनाकर बन्दीगृह में रख लिया।

एक दिन वाली बन्दीगृह में पहुँचा। वह जानना चाहता था कि वह कौन है जो इस प्रकार इसके पीछे छुप कर वार करना चाहता था और क्यों करना चाहता था? वाली उस कोठरी के वाहर पहुँचा जहाँ रावण वन्दी बनाकर रखा गया था।

वाली ने उससे पूछा, "तुम कौन हो?"

"मैं लंकापति रावण हूँ।"

वाली हँस पड़ा। वह हँसकर वोला, "पर इसका प्रमाण क्या है?"

"जहाँ आप समाधि लगाए बैठे थे, वहाँ से एक कोस के अन्तर पर वृक्षों के झुरमुट में छुपा कर रखा मेरा विमान मिल जाएगा।"

"पर तुम चोरी-चोरी क्यों आए थे?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं देखना चाहता था कि आप वास्तविक समाधि में थे अथवा झूठी समाधि से आप लोगों को धोखा दे रहे थे?"

"तो क्या समझा है?"

"मैं समझ गया हूँ कि यह मेरी भूल थी, मैं कौन होता हूँ समाधि का भेद खोलने वाला? मैं वास्तव में आपसे सन्धि करने के लिए आया हूँ। मेरी देवताओं से भी सन्धि हो चुकी है।"

इसके उपरान्त वाली ने रावण को अपने अतिथिगृह में ठहरा दिया और कई दिन तक आवभगत की। दोनों में सन्धि वार्तालाप हुआ और फिर दोनों अभिन्न मित्र बन गए।

: 10 :

राम इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए थे। इक्ष्वाकु वैवस्वत मनु के पुत्र थे। वे जब सज्ञान हुए तो अवध में अयोध्यापुरी बसाकर रहने लगे। इनके वंश से सूर्यवंशीय राज-कुल स्थापित हो गया। दशरथ के जन्म के समय यह परिवार सहस्त्रों वर्षो से अयोध्या में राज कर रहा था। दशरथ के पिता का नाम अज था।

महाराज दशरथ धर्म में अगाध श्रद्धा रखने वाले, शूरवीर एवं बलवान राजा थे। वे कुशल राजा और वैदिक धर्म एवं संस्कृति में अगाध निष्ठा रखने वाले नरेश थे। इनके राज्य में न्याय और धर्म का आचरण होता था और सुयोग्य मन्त्रियों द्वारा राज्य चलाया जाता था।

महाराज दशरथ के आठ गुणवान मन्त्री थे। ये मन्त्री शास्त्र के तत्व को जानने वाले एवं बाहरी चेष्ठा को देखकर ही मन के भाव को समझने वाले थे। वे सदा ही राजा और राज्य के हित में तथा लोक-कल्याण में लगे रहते थे। वे सब आचार-विचार से शुद्ध रहते हुए राजकीय कार्यों में संलग्न रहते थे।

इसी प्रकार उनके दो राजपुरोहित थे ऋषि वशिष्ठ और मुनि वामदेव। वास्तव में ये उपाधियाँ थी जो उनको गुणों के कारण मिली थीं। ये विद्याओं के जानने वालों के नाम हैं। वशिष्ठ तो ब्रह्म के ज्ञाता को कहा जाता है और वामदेव साँसारिक विद्या के विद्वान की उपाधि थी।

अभिप्राय यह कि महाराज दशरथ ने अपने राज्य कार्य को दो विभागों में बाँटा हुआ था। एक विभाग धर्म-कर्म से सम्बन्ध रखता था। दूसरे विभाग में राज्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कार्य चलता था। इसके लिए आठ उप-विभाग बनाए गए थे। प्रत्येक पर एक-एक मन्त्री नियुक्त था।

महाराज दशरथ के कुछ मन्त्री ऐसे भी थे, जो समय-समय पर बुलाए जाते और कभी किसी जटिल समस्या के उपस्थित होने पर उनसे परामर्श किया जाता था। ये धर्म-कर्म के जानने वाले ऋषिगण थे।

राजा के सभी मन्त्री व्यवहारकुशल और भली प्रकार परीक्षित थे। ये कोप के संचय, उसके उपयोग तथा चतुरंगिणी सेना के सुधार में संलग्न रहते थे। ये राज्य के सत्पुरुषों का सम्मान व नागरिकों की सदा रक्षा एवं उनकी समस्याओं का निवारण करते थे।

विद्वानों और वीरों को आदर व सम्मान मिलता था। मन्त्रियों का एक कार्य यह भी था कि प्रत्एक नागरिक की शिक्षा का प्रवन्ध करे और उनकी कार्य कुशलता के अनुसार उनके वर्ण का निर्धारण करे। यदि कोई नागरिक सक्षम न हो तो उसकी क्षमता अनुसार उसके लिए कार्य ढूंढा जाए।

राजा सव मंत्रिगणों को गुरुतुल्य आदर प्रदान करता था और वे अपने सद्गुणों के कारण सर्वत्र विख्यात थे। परन्तु महाराज दशरथ नि:सन्तान थे। वे एक के वाद दूसरा और तीसरा विवाह कर चुके थे। इस पर भी उनको पुत्र-सुख प्राप्त नहीं था।

अपने अनेक सद्गुणों के कारण ही देवताओं ने महाराज दशरथ के वंशज को अधर्मपरायण राक्षसराज रावण के विरोध के लिए तैयार करने का विचार किया था। अत: महाराज को पुत्रेष्टि यज्ञ करने की प्रेरणा दी गई और महाराज ने स्वीकार कर ली।

राजा दशरथ ने मन्त्रियों, ऋत्विजों और अन्य महर्षियों की सम्मति से अश्वमेध यज्ञ एवं पुत्रेष्टि यज्ञ किया। इस यज्ञ में देवताओं का भी एक दूत आया। उसने राजा दशरथ को सम्बोधित करके कहा, "नरेश्वर! मुझे प्रजापति लोक (ब्रह्मलोक) का पुरुष जानो। मैं ब्रह्मा जी की आज्ञा से आया हूँ। आप ईश्वरभक्त हो, देवताओं की आराधना करते हो। इस कारण यह देवताओं द्वारा वनाई हुई खीर (औषधि) आपको भेजी गई है। यह उत्तम सन्तान की प्राप्ति कराने वाली है।"

राजा ने वह दिव्य औषधि अपनी रानियों को खिलाई और समय पर तीनों रानियों की सन्तान हुईं। वड़ी रानी कौशल्या के पुत्र का नाम राम रखा गया। मझली रानी सुमित्रा के दो लड़के हुए, नाम रखे गये लक्ष्मण और शत्रुघ्न। सवसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
छोटी रानी कैकेयी के भी पुत्र का जन्म हुआ उसका नाम रखा गया भरत।

राजा के चारों पुत्रों का विधिवत् लालन-पालन होने लगा। वे ऋषि वशिष्ठ व मुनि वामदेव इत्यादि गुरुजनों की देख-रेख में बड़े होने लगे तथा शिक्षित होने लगे। चारों राजकुमार समय पाकर ज्ञानवान् और सदगुणों से सम्पन्न हुए। उनमें भी रामचन्द्र सबसे अधिक पराक्रमी, तेजस्वी और जन-जन के विशेष प्रिय थे। वे निष्कलंक चन्द्रमा की भाँति अयोध्यापुरी में शोभा पाते थे।

चारों भाईयों का आपस में बहुत स्नेह था व वे अपनी तीनों माताओं व पिता का बहुत सम्मान करते थे व उनसे दुलार पाते थे।

: 11 :

रावण के विन्धय प्रदेश के राजा अर्जुन द्वारा बन्दी बनाए जाने के समाचार की भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियायें हुई। देवलोक में इन्द्र को पता चल गया कि राजनीति और युद्ध-नीति में कहाँ अन्तर है? सद्व्यवहार व राजनीति अपने राज्य में रहने वालों से सम्बन्ध रखती है। वह देश तथा जाति में धर्मानुसार प्रचलित होती है। शत्रु के साथ नीति भिन्न होती है। युद्ध में शत्रु माया (छलना) का व्यवहार भी कर सकता है। आपकी पराजय के पश्चात कोई सुनने वाला नहीं। मेघनाथ ने इन्द्र को भी माया से ही बन्दी बनाया था। कुछ राक्षस सैनिकों को देवताओं के पहरावे में इन्द्र के पास भेज दिया गया और इन्द्र को कहा गया कि देवताओं ने रावण की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी को बन्दी बना लिया है और वह राजा इन्द्र को अपना नृत्य और संगीत सुनाएगी। इन्द्र छलना में फँस गया और अपने थोड़े-से साथियों के साथ नृत्य देखने चला गया। वहाँ मेघनाथ ने उसे बिना प्रयास ही बन्दी बना लिया। एक बार जब इन्द्र बन्दी हो गया तो उससे अपनी मनचाही शर्तें मनवा लीं।

नारद-मुनि विश्व-भर में भ्रमण करते थे और प्राय: सब राजाओं से परिचित थे। उनसे देवराज इन्द्र ने राजा अर्जुन की विजय कथा सुनी कि किस प्रकार नर्मदा के जल को बाँध लगा रोकने का प्रबन्ध किया गया है और जिससे उस पूर्ण नदी क्षेत्र में पानी का बहाव रोका या बढ़ाया जा सकता है। इस विधि से बिना एक भी तीर चलाए रावण के तीन-चौथाई सैनिक डूब गए। पुष्पक विमान जल भर जाने से बेकार हो गया था और डूबते रावण को बन्दी बना लिया गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इन्द्र समझ गया कि आर्य राजा देवताओं से नीति में बाजी ले गये हैं। अतः उसने आर्यों को ही राक्षसों से भिड़ाकर रावण का वध करने का विचार बना लिया। तब नारद ने कहा, " देवराज इन्द्र! राजा अर्जुन तो अब वृद्ध हो गया है। आपको स्मरण होगा कि कौशल नरेश राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि-यज्ञ किया था। तब वह पचपन वर्ष के थे। उसकी सबसे छोटी रानी भी उस समय चालीस वर्ष की थी। उसकी तीनों रानीयों में से किसी के भी सन्तान न थी।

"महर्षि शृंगी ने यज्ञ कराया था। उस यज्ञ में पितामह ब्रह्माजी के निर्देश पर अश्विनी कुमारों ने यहाँ से एक औषध बनाकर राजा के यज्ञ में भेजा था और उसे राजा दशरथ ने अपनी तीनों पत्नियों को खाने को दिया था।

"बड़ी रानी पचास वर्ष से ऊपर की आयु की थी। उसके गर्भ से एक अति तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ था। दूसरी रानी सुमित्रा के दो पुत्र हुए थे और तीसरी रानी के भी एक पुत्र हुआ था।

"चारों भाई दैवी गुणों से सम्पन्न और कुशल योद्धा हैं। परन्तु उनके पास दिव्यास्त्र नहीं हैं और न ही उनमें उन दिव्यास्त्रों के प्रयोग की योग्यता है।"

नारद ने आगे बताया, "पितामह ने मुझे अपनी योजना आगे चलाने के बारे में बताया है कि राजा दशरथ का बड़ा लड़का राम अब सक्षम हो गया है और वह रावण को पराजित कर सकेगा। अतः उसे दिव्यास्त्र प्रयोग करने का ढंग सिखाने का प्रबन्ध करना चाहिए।

"इस समय गंगा के दक्षिण की ओर विन्ध्याचल की तलहटी के वन में राजर्षि विश्वामित्र अपना आश्रम बना कर रहते हैं। उनके पास बहुत-से दिव्यास्त्र हैं। पितामह की योजनानुसार मैं उनके पास जा रहा हूँ और उनको उन अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग का ढंग राम को बता देने का आग्रह करूँगा।

"परन्तु मेरा अनुमान है कि रावण को परास्त करने के लिए ऋषि विश्वामित्र के अस्त्र-शस्त्रों से काम नहीं चलेगा। इसमें आप भी कुछ सहायता कर दें।"

इन्द्र ने कहा, "बात यह है कि ब्रह्मा के सम्मुख मेरी रावण से सन्धि हो चुकी है। इस कारण मैं सहायता नहीं कर सकता।"

"ठीक है, आपको उससे युद्ध नहीं करना चाहिए। परन्तु आप ऐसे दिव्यास्त्र तो राम के पास पहुँचा ही सकते हैं जो राम जैसे युवक प्रयोग कर सकें।"

"ठीक है, मैं यह कर सकूंगा। परन्तु मुझसे एक भयंकर भूल हो गई थी और राजर्षि विश्वामित्र, गौत्तम ऋषि के साथ किए गए मेरे उस छल के कारण मुझसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कुपित हैं। वह मुझसे मिलेंगे भी नहीं। अत: उनके पास जाने से मेरी सहायता का भेद खुल जाएगा। दण्डक वन में शरभंग ऋषि का आश्रम है जो बहुत पहले लंका में अपने आश्रम में तपस्या करते थे। माल्यवान एवं अन्य राक्षसों से पीड़ित ऋषि शरभंग महादेव के पास पहुँचे थे। वहाँ से सहायता न पा वह धौम्य मुनि की सहायता से सागरपति विष्णु के पास गये थे।

"भैया विष्णु ने उन्हे दण्डक वन में आश्रम बना कर रहने में सहायता की थी। वहाँ रहते हुए वह कुछ अन्य ऋषियों के साथ तपस्या कर रहे हैं। ऐसा करता हूँ कि उन्हें मैं अपने शस्त्रास्त्र दे दूँगा। वह इस योग्य हैं कि उनके चलाने का ढंग सीख और सिखा सके।"

"तो ऐसा करिए कि आप शरभंग ऋषि से सम्पर्क बनाईये और मैं विश्वामित्र जी से बात करता हूँ।"

नारद मुनि, ऋषि विश्वामित्र के पास, मलद और कुरुप नगरों के उजड़ जाने पर बने वन में जा पहुँचा। राजऋषि विश्वामित्र उन दिनों एक यज्ञ कर रहे थे। उनके कुछ शिष्य भी उस यज्ञ में सम्मिलित हो रहे थे।

ऋषि विश्वामित्र नारद को पहचानते थे। अत: देवऋषि नारद के आने की सूचना पर ऋषि विश्वामित्र उनके स्वागतार्थ आश्रम से बाहर आए और देवर्षि के चरण-स्पर्श कर उन्हें आदर से आश्रम में ले गए। सम्मान से उच्च आसन पर बैठाकर हाथ जोड़ पूछने लगा, "भगवन! कैसे आना हुआ?"

'मैंने सुना है कि आप इस भयंकर वन में बैठे यज्ञ कर रहे हैं और यहाँ पर राक्षसों ने विघ्न तथा बाधाएँ डालनी आरम्भ कर दी हैं।"

"हाँ, भगवन्! वे नित्य यज्ञ को भ्रष्ट करने आते हैं। मुझे और मेरे शिष्यों को तो हानि पहुँचा नहीं सकते। मैं अपनी रक्षा के लिए अपने शस्त्रास्त्र प्रयोग कर लेता हूँ। कठिनाई यह है कि यज्ञ पर बैठे हुए मैं किसी की हत्या नहीं कर सकता। किसी राजा की सेना यहाँ सहायता को आए तो इस आश्रम की शान्ति नष्ट हो जाएगी।"

"आप ठीक कहते हो!" नारद ने कह दिया, 'मैंने भी ऐसा ही सुना है और मैं आपकी सहायता के लिए आया हूँ।"

'मैं आपका अत्यन्त आभारी रहूँगा।"

"देखो, ऋषिवर! आपको कोई क्षत्रियकुमार चाहिए जो आपके दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर सके और फिर इस वन को राक्षसों से मुक्त करा सके।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह तो ठीक है। परन्तु मुझे भय है कि वह मेरे अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग सीखकर भले लोगों को ही कष्ट देना आरम्भ न कर दे।"

"ऋषिवर! कौशल राज्य की राजधानी अयोध्या में राजा दशरथ अपने चार युवा पुत्रों के साथ रहते हैं। चारों ही धीर, वीर, शिक्षित व उत्तम व्यवहार वाले हैं। उनमें सबसे बड़ा राम है। वह श्रेष्ठ राजा के सभी गुणों से सम्पन्न है और इस कार्य में सक्षम भी है। उसका छोटा भाई लक्ष्मण उसका भक्त है। दोनों ही बहुत श्रेष्ठ स्वभाव रखते हैं। निश्चित ही उनके हाथों में आपके शस्त्र सुरक्षित रहेंगे। आप राजा दशरथ से अपने यज्ञ की रक्षा के लिए उनको माँग लाओ और यदि वे सुपात्र लगें तो उनको शिक्षा देकर तैयार करो। निश्चित ही वे आपके यज्ञ के निर्विघ्न पूर्ण होने में सहायक हो जायेंगे। तत्पश्चात वह इस धरती को पापी व दुराचारी राक्षसों से मुक्त कर सकेंगे। वे धर्मात्मा राजा के पुत्र धर्म की रक्षा करेंगे।"

"परन्तु महाराज दशरथ अपने पुत्रों को यहाँ इस भयंकर वन में भेजना पसन्द नहीं करेंगे।"

"इसका प्रबन्ध हो सकता है। आप राजा के पुरोहित वशिष्ठजी के सामने राजकुमारों को यज्ञ की रक्षा के लिए माँग लेना। महर्षि वशिष्ठ आपकी सहायता कर देंगे। अपने गुरु व पुरोहित की बात राजा टाल नहीं सकेंगे।"

इस प्रकार योजना बन गयी। उसी दिन राजर्षि विश्वामित्र अन्य मुनियों के साथ अयोध्या के लिए चल दिए।

: 12 :

जब किष्किन्धा नगरी में रावण और वाली में सन्धि हो रही थी तो लगभग उसी समय विश्वामित्र अयोध्या में राजप्रासाद के द्वार पर पहुँच द्वारपालों को कह रहे थे, "महाराज को सूचना दो कि विश्वामित्र व कुछ अन्य मुनि पधारे हैं।"

राजर्षि विश्वामित्र के साथ उनके चार शिष्य भी थे। द्वारपालों ने ऋषि विश्वामित्र का नाम सुन रखा था। अत: उनमें से एक आगन्तुक ऋषि का नाम सुनते ही भागा और महाराज दशरथ को सूचना देने अन्त:पुर में जा पहुँचा और दूसरा उनको आसन देकर जल इत्यादि के लिए पूछने लगा।

अन्त:पुर को गया द्वारपाल दासी द्वारा भीतर सूचना भेज उत्तर की प्रतीक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में खड़ा रहा। दासी गयी और तुरन्त ही लौटी। उसने द्वारपाल को वताया, "महाराज की आज्ञा है कि ऋपि को आदरसहित अतिथि गृह में ठहराया जाए और उनकी विशेप सेवा का प्रवन्ध हो। महाराज स्वयं वहाँ पहुँच रहे हैं।"

राजर्पि का ऋपियोचित सत्कार और सेवा की गयी। ऋपि अभी विश्राम कर उठे ही थे कि महाराज दशरथ अपने पुरोहित वशिप्ठ और मन्त्रियों सहित अतिथि-गृह में पहुँच गये। महाराज ऋपि के चरण-स्पर्श कर हाथ जोड़ सामने खड़े हो गये।

विश्वामित्र ने महाराज को आशीर्वाद दिया और सामने वैठने को कहा। जव महाराज और उनके साथ आये सव मन्त्रीगण वैठ गये तो विश्वामित्र ने महाराज का, महारानियों का तथा पुत्रों का कुशल-मंगल पूछा। यथोचित उत्तर पा ऋपि ने कहा, "हम एक विशेप कार्य से आये हैं। उस कार्य में आपकी सहायता की आवश्यकता है। यदि आप मेरी वात मानने का वचन दें तो मैं कहूँ।"

"ऋपिवर! यह सव राज-पाट और मैं भी सपरिवार आपकी सेवा के लिए उपस्थित हूँ। आज्ञा करिये, यहाँ से कोई भी व्यक्ति निराश नहीं जाता।"

"महाराज!" ऋपि ने अपना आशय वताने के लिए कहा, "भगवान् आपका कल्याण करें। मैं अपने सिद्धाश्रम में एक यज्ञ का अनुप्ठान कर रहा हूँ। उसमें कुछ राक्षस विघ्न डालते रहते हैं। मैं चाहता हूँ कि जव तक मेरा यज्ञ पूर्ण नहीं हो जाता, मेरी तथा यज्ञ की रक्षा करने वाला कोई वीर पुरुप वहाँ रहे। इस कार्य के लिए मुझे आपके दो पुत्र राम और लक्ष्मण उपयुक्त समझ में आये हैं। मैं चाहता हूँ कि आप उनको मेरे साथ भेज दें। यज्ञ समाप्त होने पर मैं उनको यहाँ छोड़ जाऊँगा।"

राजा दशरथ जानते थे कि सिद्धाश्रम ऐसे वन में है, जहाँ किसी राजा का राज नहीं। वहाँ राक्षसों का वाहुल्य है। राजा का विचार था कि राम और लक्ष्मण अभी सुकुमार हैं और वे राक्षसों से युद्ध करने में सक्षम नहीं। इस कारण वह अवाक् महर्पि का मुख देखते रह गये।

ऋपि विश्वामित्र ने कुछ देर तक राजा के उत्तर की प्रतीक्षा की और फिर पूछ लिया, "राजन्! क्या विचार कर रहे हैं?"

"मैं अपनी सेना के साथ स्वयं आपके आश्रम की रक्षा के लिए चल सकता हूँ। राम और लक्ष्मण अभी वालक हैं। इन्होंने अभी तक कोई युद्ध नहीं देखा।"

"नहीं राजन्! आप नहीं समझते। यज्ञ की रक्षा के लिए सेना गई, तो वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं ही यज्ञ में विघ्न बन जायगी। साथ ही मैं जानता हूँ कि जो कार्य ये दो बालक कर सकते हैं, आपकी एक कोटि सेना भी नहीं कर सकेगी।

"मुझे आपके दोनों पुत्र चाहियें। बताइये, है स्वीकार अथवा मैं यहाँ से निराश लौट जाऊँ?"

राजा ने वशिष्ठजी की ओर देखा। वह भी मौन बैठे रहे। कुछ देर सन्नाटा छाया रहा। तब आवेश में विश्वामित्र उठ खड़े हुए। इसका अभिप्राय था कि वह जा रहे हैं। उनके उठने पर राजा दशरथ भयभीत हो उठे। उन्हें भय हो गया था कि विश्वामित्र नाराज न हो जायें। फिर वह उनको वचन भी दे चुके थे। अत: उन्होंने राजऋषि के पाँव पकड़ लिये और कहा, "भगवन्! मुझे पर दया करें। मुझे मन्त्रियों और पुरोहितजी से सम्मति कर लेने दीजिये।"

विश्वामित्र बैठ गये और राजा से बोले, "यज्ञ की रक्षा किसी देश अथवा नगर की रक्षा के समान नहीं होती। महर्षि वशिष्ठ इस बात को जानते हैं। वहाँ तो एक अथवा दो सिद्ध धनुर्धर चाहियें जो रक्षा का कार्य शान्ति से कर सकें और जब वे सुरक्षा कार्य कर रहे होंगे तब हम शान्तिपूर्वक यज्ञ कर सकेंगे।"

"तो मै स्वयं प्रस्तुत हूँ। मैं साथ चलूंगा।" राजा बोले।

"नहीं राजन अब आपकी आयु इस कार्य के उपयुक्त नहीं।" राजर्षि बोले।

अब वशिष्ठजी ने राजा दशरथ को सम्बोधित कर कहा, "राजन! राजर्षि ठीक कहते हैं। राम और लक्ष्मण वह कुछ कर सकेंगे जो आप या आपकी पूर्ण सेना नहीं कर सकेगी।

"मेरी सम्मति है कि राजर्षि का पूजन कर इनको राम तथा लक्ष्मण के साथ विदा कर दिया जाये।"

इस पर राजा का मुख उतर गया। राजा ने दयनीय दृष्टि से महर्षि वशिष्ठ और राजर्षि विश्वामित्र की ओर देखकर कहा, "भगवन्, मुझे उनके जीवन का भय लग रहा है।"

"महाराज! जहाँ राजर्षि उपस्थित होंगे वहाँ मृत्यु समीप भी नहीं आ सकती।"

इस कथन के पश्चात राजा के पास कहने को कुछ नहीं रहा। अत: सेवक द्वारा राम और लक्ष्मण को वहीं बुला भेजा और उनको समझाकर राजर्षि विश्वामित्र के साथ कर दिया।

मार्ग में चलते हुए राजर्षि ने राम और लक्ष्मण को अपने विषय में और अपने यज्ञ के विषय में समझाया। नारद मुनि के कथनानुसार विश्वामित्र ने राम इत्यादि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को रावण व अन्य राक्षसों के साथ युद्ध के लिए तैयार करना था और इस युद्ध की तैयारी के लिए रावण से युद्ध करने की आवश्यकता की बात बतानी आवश्यक थी। इसके लिए दानव व देव संस्कृति में अन्तर बताने की भी आवश्यकता थी। इसी उद्देश्य से विश्वामित्र ने अपनी ही जीवन-कथा से वार्ता आरम्भ की।

उन्होंने चलते हुए पूछा, "राम! जानते हो कि मैं कौन हूँ?"

"महाराज! इतना ही जानता हूँ कि आप एक ऋषि हैं और सिद्ध आश्रम में एक यज्ञ कर रहे हैं।"

"हाँ, यह तो तुमको ठीक ही बताया गया है। सिद्धाश्रम के मार्ग में एक ताड़का वन है। उस वन का नाम एक ताड़का नाम की असुर स्त्री के कारण पड़ा है। वह स्त्री अति भयंकर योद्धा है। वह और उसके साथी नर-माँस भी खाते हैं। अत: इस वन के आस-पास के ग्रामों में वे किसी भी मनुष्य को बसने नहीं देते, कोई आ जाये तो उसे लूट कर और मारकर उसका माँस भी खाते हैं। इससे धीरे धीरे वन क्षेत्र बढ़ रहा है। अत: यदि वह तुम्हे दिखती है तो नारी समझ दया नहीं करनी।"

"गुरुजी!" राम ने पूछा, "यह किसकी लड़की और किसकी पत्नी है?"

"वह सुकेतु नाम के एक यक्ष की लड़की है। घोर तपस्या के उपरान्त उसके घर यह लड़की उत्पन्न हुई थी। यह अति सुन्दर देवकन्या के समान थी। यक्ष देवलोक के निवासी हैं। इसका विवाह एक सुन्द नाम के व्यक्ति से हो गया। सुन्द इस सुन्दर स्त्री पर इतना मुग्ध हुआ कि वह सदा उसकी आज्ञानुसार काम करता था।

"ताड़का और सुन्द की सन्तान एक दुर्जन बलशाली पुत्र हुआ। उसका नाम मारीच है। मारीच माँसाहारी हो गया। इससे वह जहाँ कहीं भी वन-पशु मिलते, उनको मारकर खा जाता।

"एक बार वह अगस्त्य ऋषि के आश्रम पर आया। अगस्त्य ऋषि उन दिनों देवपुत्रों को पढ़ाने के लिए देवलोक में ही आश्रम बनाकर रहते थे। वहाँ बहुत से मृगों को स्वेच्छा से विहार करते देख उनका माँस खाने की लालसा करता हुआ उस आश्रम के पास ही रह गया। वह नित्य आश्रम के मृगों को मार-मार कर खाने लगा। ऋषि ने उसे मना किया, परन्तु वह नहीं माना। इस कारण महर्षि ने मारीच को श्राप दे दिया।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या श्राप दिया?" राम ने पूछ लिया।

"उसको देश-निष्कासन का श्राप दिया और इन्द्र ने महर्षि के कथन का पालन करते हुए मारीच को देवलोक से निकल जाने की आज्ञा दे दी।"

"तो यह श्राप कहा जाता है?"

"हाँ; ऋषि-मुनि किसी की हत्या नहीं करते और न स्वयं किसी को कोई दण्ड देते हैं। वे श्राप ही देते हैं। श्राप का अभिप्राय यह है कि वे किसी पापी को उसके पाप का दण्ड सुना देते हैं और उस दण्ड का पालन राजा कराता है।

"यही बात मारीच के साथ हुई। मारीच को देवलोक से निकाल दिये जाने का दण्ड हो गया। ऋषि का वह वचन देवराज इन्द्र को बताया गया तो इन्द्र ने अपने गण भेज मारीच को देवलोक से बाहर कर दिया।

"मारीच को देवलोक से निकाला गया तो उसकी माँ ताड़का को अति दु:ख हुआ। उसने अपने पति को कहा कि इस ऋषि से यह दण्ड वापस करवाये।"

"सुन्द मुनि जी के पास पहुँचा तो अगस्त्यजी माने नहीं। इस पर सुन्द ने मुनिजी को मार डालने की धमकी दे दी तो मुनि जी ने उसे मृत्युदण्ड का श्राप दे दिया।

"वह इन्द्र की आज्ञा से मृत्यु-दण्ड पा गया। इस पर तो ताड़का क्रोध से भर गयी और उसने अगस्त्य आश्रम को उजाड़ना और वहाँ के प्राणियों को मारना आरम्भ कर दिया।

"इस कारण ताड़का को भी देवलोक से निकाल देने का शाप दे दिया गया। मारीच इस वन में रहता था। ताड़का भी यहाँ आ गयी और दोनों यहाँ सब प्रकार के उपद्रव करते रहते हैं। इनके मुख को नर माँस का स्वाद लग चुका है। इस कारण जहाँ भी किसी अकेले या दुकेले मानवों को देखते हैं उनको मारकर खा जाते हैं। मैं सन्यासी हूँ, जीव हत्या नहीं कर सकता और इस क्षेत्र में किसी राजा का राज नहीं है अत: मुझे तुम्हारे पिता के पास जाना पड़ा। राजा दशरथ चक्रवर्ती राजा हैं। समस्त आर्यवर्त में जो भी क्षेत्र किसी राज्य में नहीं आता, उसकी सुरक्षा का दायित्व चक्रवर्ती राजा का होता है और तुम उनका प्रतिनिधित्व कर रहे हो।"

जब राम और लक्ष्मण इस वन में से गुज़र रहे थे कि ताड़का से साक्षात्कार हो गया। वह स्त्री माँसाहार के कारण बेडौल शरीर और अपने बृहत् दातों के साथ भयंकर रूप वाली प्रतीत हो रही थी। साथ ही वह युद्ध करना भी जानती थी। वह राम को पकड़ मार कर खा जाने के विचार से लपकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम को राजर्षि विश्वामित्र ने सचेत कर रखा था। अत: राम ने उसे देखते ही धनुप पर वाण चढ़ाया और राक्षसी की बाहें घायल कर दीं। इस पर वह क्रोध से भरी हुई राम मारने को दौड़ी, तो राम ने उस पर वाण-वर्षा कर उसे मार डाला।

उसके मर जाने पर राम ने महर्षि से पूछ लिया, "भगवन्! यह देवकन्या तो प्रतीत नहीं होती थी। इसका रूप अति विकराल था। आपने कहा था कि यह एक सुन्दर देवकन्या थी।"

"हाँ, परन्तु जव सुन्दर-से-सुन्दर व्यक्ति भी चिरकाल तक क्रूर कार्य करता रहे तो उसका रूप विकृत हो जाता है। नर-माँस खाने से भी आकृति में विकरालपन उत्पन्न होने लगता है।

"सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है अपने कर्म और रहन-सहन का। इस स्त्री का रहन-सहन पिशाचों वाला था। यही कारण है कि इसकी सुन्दर काया भद्दी व कुरूप हो गई थी।"

ताड़का को मार कर उस वन में से निकल वे सिद्धाश्रम पर जा पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही राम और लक्ष्मण यज्ञ मण्डप की रक्षा का प्रवन्ध करने लगे और ऋषि अपने साथियों के साथ अपने अधूरे यज्ञ की पूर्ती में जुट गए।

: 13 :

जव वेद-ध्वनि उठने लगी एवं अग्नि से सुगन्धित द्रव्यों का सुवासित धुआँ उठने लगा तो राक्षस भी विघ्न डालने के लिए आने लगे।

जो भी आता, राम उस पर अपने वाणों की वर्षा कर देते थे। जो भाग जाते, वे वच जाते। जो नहीं भागते थे, वे मारे जाते थे।

पहले दिन तो कुछ विशेष घटना नहीं हुई। कुछ राक्षस मारे गये और शेप भाग गये। रात के समय जव सव विश्राम करने के लिए तैयार हुए तो राम ने पूछ लिया, "गुरु जी! आपका यज्ञ तो किसी प्रकार से भी यहाँ के राक्षसों को कष्ट नहीं देता। इस पर भी ये वार-वार इसमें विघ्न डालने क्यों आते हैं?"

विश्वामित्र ने इसका कारण वताते हुए कहा, "सदा से यह नीति चली आ रही है कि दुर्जन लोग श्रेष्ठ जनों के श्रेष्ठ कार्यों मे वाधा उत्पन्न करते ही हैं। श्रेष्ठ लोगों के कारण उनके दुराचार उजागर होते हैं व उनका सार्वजनिक वहिष्कार होता है। इससे उनमें हीन भावना उत्पन्न होती है। इसका निराकरण करने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए वह श्रेष्ठ जनों को ही मारने को तत्पर हो जाते हैं। आज लंकापति रावण जो यहाँ से चार सौ योजन के अन्तर पर लंका पर राज्य करता है, सभी दुर्गुणों का प्रतीक है। उसने छल और वल से अपने भाई से लंका का राज्य हथियाया व छल से देवलोक को विजय कर देवताओं से भी कर लेता है।

"उसने आर्यवर्त निवासी आर्यों (श्रेष्ठ लोगों) पर भी आक्रमण किया था, वह आर्य-राज्यों को पराजित नहीं कर सका। एक वार वह सेना लेकर विन्ध्याचल प्रदेश में जा पहुँचा। वह राज्य को विजय कर वहाँ अपना राज्य स्थापित करना चाहता था। विन्ध्याचल प्रदेश के राजा अर्जुन ने उसे सहज ही वन्दी वना लिया। पीछे सन्धि हुई तो रावण को समझ आ गया कि वह आर्य-राज्यों को पराजित नहीं कर सकेगा। अत: उसने आर्यावर्त को विजय करने का ढंग वदल लिया है।

"शस्त्रास्त्रों से आक्रमण कर विजय न कर सकने पर उसने इस देश को विजय करने का एक दूसरा उपाय करना आरम्भ कर दिया है। उसने सहत्रों राक्षस यहाँ भेजे हुए है। वे गाँव-के-गाँव लूट कर वरवाद करते जाते हैं। वे किसी से जमकर युद्ध नहीं करते। छापे मारते हैं और आर्यों (श्रेष्ठ जनों) को लूट-मार कर, अकेले मिलने वालों को खाकर विन्ध्याचल के दक्षिण के वनों में जा छुपते है।

"इस प्रकार पूर्ण विन्ध्याचल प्रदेश के गाँव उजड़ रहे हैं। लोग अपने घरों को छोड़-छोड़कर भाग रहे हैं और जव कोई गाँव अथवा नगर जन-शून्य हो जाता है, तव धीरे धीरे वहाँ वन वन जाता है। ये लोग तव वहाँ पशुओं को एकत्रित कर अपने खाने-पीने का प्रवन्ध करते हैं और वहीं अपना निवास वना लेते हैं। वह प्रदेश अघोपित रूप से राक्षस प्रदेश वन जाता है। इस प्रकार वे अपनी संस्कृति को धीरे-धीरे उत्तर की ओर वढ़ा रहे हैं।

"इस वन के समीप वसे ग्रामों को भी रावण के राक्षसों ने मारीच के नेतृत्त्व में उजाड़ा है और अव वे हमें भी खदेड़ना चाहते हैं जिससे यह वनस्थलि भी सघन वन में परिवर्तित हो जाए । इस प्रकार इनकी राक्षस संस्कृति विस्तार पा रही है। यह है इनके मन में हमारे प्रति इनके व्यवहार का कारण।"

मारीच को जव अपनी माँ के मारे जाने की सूचना मिली तो वह अपने साथियों के साथ इस वन में आ धमका। वह एक कुशल योद्धा था। उसे जव पता चला कि उसकी माँ को मारने वाले दो युवक राजर्पि विश्वामित्र के आश्रम में हैं तो वह उनसे युद्ध करने चला आया।

घोर युद्ध हुआ। दोनों ओर से डटकर मुकावला हुआ। अत्यधिक राक्षसों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हनन हुआ और मारीच घायल हुआ तो उसके साथी उसे उठाकर ले गये।

इस पर यज्ञ में विघ्न डालने वाले भागने लगे और यज्ञ चलता गया। शीघ्र ही सिद्धाश्रम व वह वन राक्षसों से मुक्त हो गया। राजर्पि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा में सफलता के साथ साथ राम लक्ष्मण का व्यवहार एक प्रकार से दोनों भाई यों की परीक्षा थी, जिसमें वे दोनों सफल रहे।

अव रावण के विरुद्ध युद्ध के लिए राम को तैयार करना था। भविप्य में होने वाले राम और राक्षसराज रावण के युद्ध का संतुलन वनाने के लिए ऋपि विश्वामित्र को अपने दिव्यास्त्रों के लिए सुपात्र मिल गए थे। उनकी शिक्षा राम व लक्ष्मण को मिलने लगी।

: 14 :

राजर्पि जो स्वयं कभी राजा थे व कुशल योद्धा थे और वह अपने तप के वल से राजर्पि पद को प्राप्त हुए थे। दोनों भाई उनके पास एक वर्प से अधिक रहे। वहाँ रहते हुए उन्होने न केवल राक्षसों से वास्तविक संघर्प का मूल कारण भी जाना वरन यज्ञ की रक्षा की। राक्षसों का प्राक्रम व क्रूरता देखी और उनसे युद्ध करने का ढंग सीखा। राजर्पि से अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों के प्रयोग का ढंग सीखा।

राम और लक्ष्मण अभी सिद्धाश्रम में ही थे, जव यह समाचार मिला कि विदेह के महाराज जनक अपनी पुत्री का विवाह स्वयंवर द्वारा कर रहे हैं। देश-विदेश के राजा मिथिला की जनकपुरी में पहुँच रहे थे। इस सूचना से ऋपि विश्वामित्र के मन में एक विचार उत्पन्न हुआ और उन्होंने राम को कहा, "राम! अव तुम्हारे लौटने का समय आ गया है। हम लौटते हुए जनकपुरी चलेंगे।"

"वहाँ क्या है गुरुजी?"

"महाराज जनक की पुत्री का स्वयंवर हो रहा है। मिथिला नरेश एक वृहत् यज्ञ रच रहे हैं। उस यज्ञ में दूर-दूर से आए राजपुरुप व विद्वान् ऋपि लोग उपस्थित होंगे। हमें भी चलना चाहिए।"

राम लक्ष्मण तथा सिद्धाश्रम के वहुत से मुनि मिथिला को चल पड़े। मिथिलापुरी को जाते हुए मार्ग में विश्वामित्र राम, लक्ष्मण और सिद्धाश्रम के मुनियों के साथ महर्पि गौतम के आश्रम के समीप से निकले। उस आश्रम का सौन्दर्य देख राम ओर लक्ष्मण मुग्ध हो गये। राम ने मुनिश्रेप्ठ से पूछा, "गुरुवर! यह आश्रम इतना सुन्दर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है परन्तु यह निर्जन क्यों पड़ा है? क्या यहाँ कोई नहीं रहता?"

राजर्पि विश्वामित्र ने उत्तर दिया, "यह आश्रम महर्पि गौतम का है। किसी समय यहाँ चहल-पहल रहती थी। महर्पि के धर्म और ज्ञानयुक्त प्रवचन सुनने के लिए दूर-दूर से लोग आते थे। कोई-न-कोई नरेश यहाँ डेरा डाले रहता था। यह आजकल सूना पड़ा है। इस पर भी वर्षों से यहाँ एक प्राणी रहता है। वह महर्पि की पत्नी अहिल्या है। महर्पि यहाँ नहीं आते। इस कारण अव यहाँ कोई नहीं आता।"

"और माताजी यहाँ अकेली क्यों रहती हैं?"

"वह पति से शापित हैं। वात यह हुई कि उन दिनों जव आश्रम में चहल-पहल रहती थी, एक दिन देवेन्द्र गौतम ऋपि के दर्शन करने आये। ऋपि कहीं गये हुए थे। इन्द्र ने ऋपि पत्नी को देखा तो उस पर मोहित हो गया। वह लौट तो गया परन्तु उसके मन में पाप समा गया। इस पर वह गौतम ऋपि का सा वेश वना कर पुन: आश्रम में चला आया। आश्रमवासियों ने उसको गौतम ऋपि ही समझा और जिस किसी ने भी उसे देखा, उन्हें ऋपि समझ आदर और सत्कार से हाथ जोड़ नमस्कार करने लगा। आश्रमवासियों से ऋपि ही समझा जाने पर आश्वस्त हो इन्द्र ऋपि की कुटिया में चला गया और ऋपि पत्नी के सामने जा खड़ा हुआ। ऋपि-पत्नी उसे पहचान गयी और वोली, 'राजन्! आपने यह छद्म वेश किस लिये वनाया है और इस वेश में आप यहाँ किस कारण आये हैं?'

"इन्द्र इस पतिव्रता स्त्री से पहचाना जाने पर झेंपा, परन्तु उसने कह दिया, "सुन्दरी! मैं तुम पर मोहित हो गया हूँ, और तुमसे प्रेम करने लगा हूँ।"

"ऋपि-पत्नी इन्द्र को अपने पर मुग्ध देख, अपने सौन्दर्य पर गर्व करती हुई स्वयं देवराज पर मोहित हो गयी।

"इन्द्र के वहाँ से विदा होने से पूर्व ऋपि वहाँ पहुँच गये। उनके पहुँचने का अभी किसी को पता नहीं चला था परन्तु ऋपि ने इन्द्र को छद्म वेश में, अपनी कुटिया में देख लिया। वह अति क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने इन्द्र के भोजन में ऐसी औपधि मिला दी जिससे वह नपुंसक हो गया। साथ ही इन्द्र को श्राप दिया कि उस दिन के पश्चात समस्त विश्व में कहीं भी, किसी भी कारण से इन्द्र की पूजा नहीं होगी।"

इन्द्र वहाँ से भागा और सीधा देवलोक में पहुँचा और अश्विनी कुमारों से आज तक अपनी चिकित्सा करवा रहा है। महर्पि द्वारा दिए गए शाप को भी अव समस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ऋषियों और विद्वानों ने लागू कर दिया है।

"जव इन्द्र चला गया तो ऋषि ने पत्नी से पूछा, 'तुम पहचान नहीं सकीं इस धूर्त को? यह दुप्ट व्यक्ति जो स्वयं को देवराज कहता है, वेश बदलकर धोखा देने यहाँ आया था।'

"ऋषिपत्नी का उत्तर था 'पहचान गयी थी, स्वामी! परन्तु मैं इनके ओज से प्रभावित हो इनसे प्रेम करने लगी थी।'

"अव गौतम-पत्नी को पश्चाताप लगने लगा। इस कारण वह अपने पति से क्षमा माँगने लगी। ऋषि तो उसे मृत्युदण्ड देना चाहते थे, परन्तु उसको पश्चाताप करते देख केवल उसका त्याग-मात्र ही किया।

" इस घटना को कई वर्प वीत गए हैं, तव से ऋषि यहाँ से दो कोस के अन्तर पर अपने नवीन आश्रम में रहते हैं और उनकी त्यक्ता पत्नी यहाँ रहती हैं। महर्पि के दर्शन करने वाले अव नये आश्रम में जाते हैं और यह आश्रम सूना रहता है। मैं समझता हूँ कि वह अपने पाप से वढ़कर प्रायश्चित कर चुकी हैं, परन्तु महर्पि गौतम आयु में मुझसे वड़े हैं। मैं उनको समझा नहीं सकता।"

राम लक्ष्मण इस कथा को सुन अति दु:खी हुए। राम ने राजर्पि से पूछा, "गुरुजी! उस माँ के दर्शन कहाँ होंगे?"

"वह वहुत दुखी है। यहाँ न उनकी वाणी सुनने वाला कोई है न ही कोई उनसे वोलने वाला। वर्पों से अकेले इस निर्जन आश्रम में अपनी भूल का घोर प्रायश्चित करती हुई वह एक शिला समान हो गई है।"

विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को उसी आश्रम के एक कोने में वनी एक कुटिया में ले गये। वहाँ एक अति दीन-क्षीण तपस्विनी आसन पर शोक-मुद्रा में पत्थरवत् वैठी हुई थी। राम ने उस दुखी स्त्री को देख झुककर नमस्कार किया और कहा, "माँ! मैं अयोध्या नरेश दशरथ का पुत्र राम हूँ। मेरे योग्य सेवा वताइये।"

अहिल्या इस सहानुभूतिपूर्ण वाक्य को सुन राजकुमारों का मुख देखती रह गयी। वह कुछ कह न सकी। उसकी आँखों से पश्चाताप के अश्रु गिरने लगे।

विश्वामित्र ने उसके मन की व्यथा के विपय में राम को कहा, "महर्पि गौतम इनके घोर प्रायश्चित व तपस्या पर भी सन्तुप्ट प्रतीत नहीं होते।"

"गुरुजी! उनको एक वार कह कर तो देखें कि आप समझते हैं कि माताजी प्रायश्चित्त करके पापमुक्त हो चुकी हैं।"

विश्वामित्र को एक वात सूझी। उन्होंने अपने एक साथी मुनि को महर्पि गौतम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आश्रम में कहलवा भेजा कि ऋषि विश्वामित्र आये हैं और महर्षि गौतम के दर्शन की अभिलाषा करते हैं। विश्वामित्र ने यह भी कहलवा भेजा कि उनके साथ इस वन को राक्षसों से मुक्त करने वाले, दिव्य शस्त्रधारी, अयोध्या नरेश चक्रवर्ती महाराज दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण भी महर्षि के दर्शन पाने की प्रार्थना कर रहे हैं।"

बात बन गयी। महर्षि गौतम आये। आते ही उन्होंने विश्वामित्र को प्रणाम कर कह दिया, "भगवन्! मैं दूसरे आश्रम में रहता हूँ।"

"मैं जानता हूँ।" विश्वामित्र ने कहा, "मैं आज से पूर्व जब भी आपसे मिला हूँ तो इसी आश्रम में, अत: मैं यहाँ ही आपके दर्शन की अभिलाषा रखता था। आपने यहाँ आकर अत्यन्त कृपा की है।

"महर्षि! राजकुमार राम आपसे कुछ निवेदन करना चाहते हैं।"

राम लक्ष्मण ने महर्षि गौतम को प्रणाम किया। ऋषि ने राम की ओर देख उसे आशीर्वाद दिया और कहा, "राजकुमार! बताओ, क्या चाहते हो?"

"मैं आपसे एक कृपा का प्रार्थी हूँ, कुछ माँगना चाहता हूँ परन्तु इस आश्रम को सूना देख अति दु:खी हूँ।"

"माँगो राजकुमार! मेरे वश में हुआ तो अवश्य दूँगा।"

"भगवन्! माताजी क्षमा के योग्य हैं। वह घोर प्रायश्चित कर चुकी हैं।"

मुनि कुछ क्षण तक राम का मुख देखते रह गये। राम ने ऋषि-पत्नी की ओर संकेत कर कह दिया, "इनकी दयनीय अवस्था देखिये। भगवन्! आप दयालू हैं अब इन पर भी दया करिये।"

गौतम ने राम की ओर देखकर कह दिया, "एवमस्तु! परमात्मा सबका कल्याण करे।"

राम ने आगे बढ़ ऋषि के चरण-स्पर्श किये और ऋषि-पत्नी का हाथ पकड़कर उसे आसन से उठाते हुए कहा, "माता जी! परमात्मा का धन्यवाद करिये आपकी तपस्या सफल हुई। महर्षिजी ने श्राप वापस ले लिया है।"

अहिल्या उठी और ऋषि के चरण-स्पर्श करने के लिए झुकी तो ऋषि ने पत्नी को उठा, उसके सिर पर हाथ रख रुंधी हुई वाणी से आशीर्वाद देते हुए कहा, "अब मैं इस आश्रम में आ गया हूँ और यहीं रहूँगा।"

राजर्षि विश्वामित्र, राम, लक्ष्मण तथा अन्य तपस्वीयों ने महर्षि गौतम व ऋषिपत्नि के अतिथ्य में कुछ दिन व्यतीत किए। इस प्रकार ऋषिपत्नि के उद्धार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
को मान्यता मिल गयी व श्रेय राजऋषि विश्वामित्र के साथ श्रीराम को मिला।

: 15 :

श्रीराम और लक्ष्मण द्वारा ऋषि आश्रम व निकटवर्ती वन को राक्षसों से मुक्त करवाना व राम और राजऋषि विश्वामित्र द्वारा ऋषि-पत्नी के उद्धार व अतिथ्य ग्रहण करने का समाचार उनके मिथिलापुरी पहुँचने से पहले वहाँ पहुँच गया था।

साधारण जन श्रीराम की वीरता, महिमा और उदारता का यशगान करने लगे। जव ये लोग मिथिलापुरी की राजधानी जनकपुरी में पहुँचे तो नगरवासी इनके दर्शन को आने लगे। ये सभी जनकपुरी के एक उद्यान में ठहरे हुए थे। अव राम के सुगठित शरीर, सौम्य स्वभाव व रूप का वर्णन प्रत्एक नगरवासी के मुख पर था। महाराज जनक भी राजर्षि विश्वामित्र और तेजस्वी कुमारों के दर्श न के लिए इनके निवास-स्थान पर आये।

राजा जनक ने विश्वामित्र के चरण-स्पर्श किये और कहा, "भगवन्! इन राजकुमारों द्वारा ताड़का वध व महर्षि गौतम की पत्नी के उद्धार करने का समाचार यहाँ पहुँचा है। हम इससे वहुत प्रसन्न हैं।"

विश्वामित्र ने महाराज जनक को आशीर्वाद दिया और वताया, "यह कौशल नरेश महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र दिव्य शस्त्रधारी राम हैं और साथ में इनके छोटे भाई लक्षमण हैं।

"मैं इनको इनके पिता की अनुमति से अपने साथ यज्ञ की रक्षा के लिए ले गया था। सिद्धाश्रम में इनकी रक्षा में मेरा यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ है। ये दोनों भाई मेरे यज्ञ को सफल करवा कर मेरे कृपा पात्र हैं। सिद्धाश्रम से जुड़ता समस्त वन अव राक्षसी उत्पात से मुक्त हो चुका है। अयोध्या को लौटते हुए ये राजकुमार और हम भ्रमणार्थ आपकी इस सुन्दर नगरी के दर्शन को आये हैं।"

इस पर जनक ने वताया, "भगवन्! हमारी कन्या सीता अव विवाह योग्य हुई है आप मेरा आतिथ्य स्वीकार करें और सीता को भी अपना आशीर्वाद देकर जाएँ हम उसके लिए स्वयंवर परम्परा द्वारा वर ढूँढ़ने का यत्न कर रहे हैं।"

"यह वात हमनें सुनी है।" राजर्षि विश्वामित्र ने कहा, "और इसी निमित्त मैं इन दो राजकुमारों के साथ यहाँ आया हूँ। ईश्वर चाहेगा तो आपकी मनोकामना पूर्ण होगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा ने एक गहरी दृष्टि राम पर डाली और सम्मोहित से ही बोले "राम देखने में एक योग्य युवक प्रतीत होते हैं, परन्तु सीता की इच्छा से उसके वर के लिए एक पैमाना निश्चित किया गया है कि हमारे भवन में रखे शिव के धनुप पर जो वाण चढ़ा सकेगा, सीता का विवाह उससे ही होगा।"

"राजन!" विश्वामित्र ने कहा, "यह शर्त तो अति कठोर है। मैंने उस धनुप को देखा है। मैं समझता हूँ कि इस युग में उस पर चिल्ला चढ़ाने में कदाचित् कोई भी समर्थ नहीं होगा।"

"हाँ, वहुत से राजकुमार यहाँ आ चुके हैं और अभी तक इस शर्त को पूरा करना तो दूर उस धनुप को उठाने में भी कोई समर्थ नहीं हुआ।"

"तो फिर यह कठोर शर्त किसलिये रखी है?"

"सीता मेरी पालित व इकलौती पुत्री है। उसका विवाह किसी वलशाली, गम्भीर व धीर योद्धा से हो और वह योद्धा उसका सम्मान एक राजकन्या के समान ही करे। ऐसा वीर निश्चयात्मक वुद्धी वाला होगा, ऐसी सीता की मान्यता है। निश्चयात्मक वद्धि ईश्वर प्रदत्त होती है। ईश्वर ऐसी कृपा अपने सच्चे भक्त पर ही करते हैं। एक ईश्वरनिष्ठ युवक मेरी पालित पुत्री का कभी अपमान न होने देगा।"

इस पर राम ने गुरुजी के कान में धीरे से कहा, "गुरुजी! मेरी इच्छा उस धनुप को देखने की हो रही है।"

विश्वामित्र ने एक क्षण तक आँखें मूँद पुन: आँखे खोल महाराज जनक को सम्वोधन कर कहा, "यह राजकुमार उस धनुप को देखने की इच्छा रखता है।"

"ठीक है। कल आप हमारा आतिथ्य ग्रहण करें। राजकुमार भी आपके साथ कल हमारे प्रासाद में पधारें तो उनको वह धनुप दिखाया जा सकता है। यदि यह उस पर वाण चढ़ाकर चला सकें तो नि:सन्देह सीता इनको वर लेगी और रघुकुल के गौरवमय कुमार के साथ सम्वंध वनने से हमारे परिवार का गौरव भी वढ़ेगा।"

अगले दिन राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ राजप्रासाद में पहुँच गये। वहाँ उन सभी का भव्य स्वागत किया गया। अल्पाहार के पश्चात शस्त्रागार में ले जाकर वह वृहताकार धनुप दिखाया गया।

राम ने सवसे पहले उस विशाल धनुष को गहरी दृष्टि से देख भगवान शिव का स्मरण कर आँखे मूँद हाथ जोड़े। उस धनुष को हाथ लगाने से पूर्व उसके वंधन को देखा। राम समझ गए कि वहाँ वल के साथ बुद्धि का प्रयोग भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
आवश्यक है। उस भारी भरकम धनुष को सीधे न उठाकर एक झटके से वृताकार घुमाते हुए उठाना है। ऐसा ही किया गया। सहज ही धनुष हाथ में आ गया। यह धनुष बहुत भारी था। ऐसा प्रतीत होता था कि शताब्दियों से वह अनछुआ सा पड़ा होगा। उस पर चिल्ला चढ़ाना टेड़ी खीर थी। उस भारी व प्राचीन अस्त्र की काष्ठ सूख चुकी थी। राम ने ऐसा दर्शाया कि वह चिल्ला चढ़ाना चाहते हैं अत: धनुष का एक सिरा धरती पर रख दूसरे सिरे को अपनी पूरी शक्ति से दवा दिया और वह टूट गया। यही राम ने चाहा भी था क्योंकि राम जानते थे कि यदि राजा की अनुपस्थिति में वह किसी गलत हाथ में पड़ जाता तो अत्यन्त विनाशकारी सिद्ध होता।

इस प्रकार धनुष के उठा लेने पर राजा जनक ने सीता का विवाह राम से करना स्वीकार कर लिया और इस वात की सूचना अयोध्या भेजी गई और वहाँ से राजा दशरथ अपने परिवार, मन्त्रियों तथा पुरोहितों सहित जनकपुरी आये। राम के विवाह के साथ उसके अन्य तीनों भाइयों का विवाह भी जनक के परिवार की कन्याओं के साथ हो गया।

विवाह के उपरान्त राजा दशरथ अपने पुत्र और पुत्र-वधुओं सहित अयोध्या लौट गये। राज्य भर में राजकुमारों के विवाह पर खुशियाँ मनाई गईं, राजा व सभी लोग प्रसन्न थे।

: 16 :

देवताओं और ऋपियों को इन सब घटनाओं से विश्वास हो गया था कि रावण के समान वलवान योद्धा तैयार हो गया है। परन्तु दोनों में युद्ध की घोपणा किस प्रकार हो? अर्जुन और वाली द्वारा वन्दी वनाये जाने के वाद रावण इतना भयभीत था कि वह मानवों से संघर्प करने के लिये तैयार नहीं होता था। वह तो मानवों को धर्मच्युत कर राक्षस संस्कृति में विस्तार चाहता था। वह समझता था कि जब मानव धर्म-विहीन हो जायें या सांसारिक सुख-भोग में लीन हो जायें अथवा वलहीन हो जाएँ तव इनको परास्त करना सुगम होगा। इसी कारण उसने मानवों के धर्म के चालक ऋषि, महर्पियों के आश्रमों को नप्ट करने के लिए अपने भाई खर के अधीन चौदह सहस्त्र राक्षस भेजे हुए थे। रावण की इस योजना का प्रथम विरोध सिद्धाश्रम में राम द्वारा हुआ था। ताड़का और सुवाहु मार डाले गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
थे। राक्षस सेना अधिकांश मारी गई और शेष भाग गई थी। मारीच भी भाग गया था।

इस समाचार से तो रावण और भी डर गया था। वह मानवों से सीधा संघर्ष नहीं करना चाहता था। वह अकेले रहने वाले ऋषि-मुनियों अथवा अन्य मानवों के पास राक्षस स्त्रियाँ भेज देता था। वे स्त्रियाँ उनसे विवाह करने की अभिलाषा करती थीं। जो विवाह के लिए तैयार हो जाते थे, वे राक्षस संस्कृति की संख्या बढ़ाने में सहायक होते थे। जो राक्षस स्त्रियों से विवाह करना अस्वीकार कर देते थे, उनको राक्षस मार कर खा जाते थे। प्राय: लोग इस दूसरी श्रेणी में ही आते थे।

यह प्रक्रिया बहुत धीरे-धीरे चलने वाली थी। इससे राक्षस प्रसन्न नहीं थे और देवता हताश होते जाते थे। परन्तु कोई उपाय नहीं था।

इस समय एक और घटना घटी। राजा दशरथ के मन में वानप्रस्थ आश्रम में जाने की अभिलाषा जाग उठी। उन्होंने मन्त्रियों और ऋत्विजों को बुलाकर अपना विचार बताया और यह प्रस्ताव रख दिया कि राम को युवराज-पद पर आसीन कर दिया जाय, जिससे धीरे-धीरे राज्य का भार उस पर डाल, वह स्वयं वानप्रस्थ आश्रम की तैयारी में लग जाएँ।

सब मन्त्रियों और ऋत्विजों ने इस विचार की सराहना की और इस शुभ कार्य के लिए दिन नियत कर दिया गया।

परन्तु देवताओं का कार्य इन सबसे चलने वाला नहीं था। कौशल राज्य गंगा के उत्तर में था। गंगा को पार कर दक्षिण की ओर कई छोटे-छोटे राजा थे। उसके बाद यमुना थी। यमुना से पार बीहड़ वन-प्रदेश था और उसके पार विन्ध्याचल था। विन्ध्याचल के दक्षिण की ओर उपद्रवी राक्षस रह रहे थे। प्रजा भाग-भागकर उत्तर के राज्यों में आ रही थीं। वहाँ की भूमि उपजाऊ थी, परन्तु जन-संख्या कम थी। कौशल राज्य में तो अभी इसका प्रभाव नहीं हो रहा था। अत: राम का रावण से कभी भी आमना-सामना होने की सम्भावना नहीं थी क्योंकि रावण अब लंका के बाहर बहुत कम निकलता था।

इस कारण देवता समझने लगे कि रावण और राक्षसों की पराजय का जो आयोजन ब्रह्मा ने किया है, वह असफल हो जायेगा।

रावण को लंका का राज्य प्राप्त किये पच्चीस वर्ष के लगभग हो चुके थे और जो उपद्रव वह दक्षिण आर्यवर्त में मचा रहा था, उससे वह प्रदेश उजड़ रहा था और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
राक्षसी प्रवृत्ति और संस्कृति बढ़ रही थी। यह चर्चा इन्द्र ने नारद मुनि से चलायी। नारद ने कहा था कि वह भारत का भ्रमण करके आ रहा है तो इन्द्र ने पूछ लिया, "तो राम-रावण का युद्ध कब होगा?"

"रावण अब द्वन्द्व-यद्ध नहीं करेगा। वाली द्वारा पकड़े जाने के उपरान्त उसे साहस नहीं हो रहा कि वह किसी से भी द्वन्द्व-युद्ध करे। अत: रावण तो द्वन्द्व युद्ध करेगा नहीं। हाँ, राम उसे ललकारे ऐसा हुए बिना नहीं रहेगा।"

"कैसे होगा यह युद्ध? दोनों एक-दूसरे से सात-आठ सौ कोस के अन्तर पर हैं।"

"उसके लिए मैं यत्न कर रहा हूँ। इस अर्थ में अयोध्या गया था और वहाँ एक पाँसा फेंक आया हूँ।"

"मुनि जी! क्या पाँसा फेंक आये हैं?" इन्द्र ने उत्सुकता से पूछ लिया।

"बताने का नहीं है। मैं ऐसा समझता हूँ कि उस चाल से राम राक्षस देश में पहुँच जायेगा। और तब दोनों मुख्य पुरुषों का आमना-सामना हो जायेगा। यह वैसा ही होगा जैसे कि विष्णु भगवान् का युद्ध माल्यवान की सेना से हुआ था।"

परन्तु विष्णु के पास तो गरुड़ और सुदर्शन चक्र था, राम के पास ऐसे साधन हैं नहीं।"

"ये साधन आपके पास हैं। आप उसे राम को देंगे।"

"यह आपको किसने कहा है।"

"कहा तो किसी ने नहीं। मैं अपने मन में विचार कर रहा था कि आपसे कहूँ कि आप इन शस्त्रों को राम को दे दें।"

"नहीं मुनिजी! ये साधन तो भगवान् की उपाधि प्राप्त व्यक्ति के ही काम आ सकते हैं।"

"अब क्या कमी रह गयी है राम को भगवान घोषित करने में। आप ब्रह्माजी से कहकर राम को भगवान् की उपाधि से विभूषित करा दें। ऐसा करने की सामर्थ्य ब्रह्माजी में है।"

"अच्छा मैं विचार करूंगा।" इन्द्र ने उत्तर दिया।

"कम से कम आप ब्रह्मा जी से इस विषय में चर्चा तो करें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: 17 :

नारद मुनि की चाल यह थी कि राम को किसी प्रकार अयोध्या से निकलवाकर उन वनों में भेज दिया जाये जहाँ राक्षसों का उत्पात हो रहा था। इसके लिए मुनि ने मंथरा को प्रभावित किया था। मंथरा कैकेयी के मैयके से आई मुँहलगी दासी थी। उसे तैयार किया गया कि वह रानी कैकेयी को वहकाये कि कौशल्या के पुत्र राम को राज्य मिलने पर राजा दशरथ सन्यासी हो जाएंगे। चूंकि अभी तक राजा सवसे अधिक उसको चाहते हैं तो उनकी अनुपस्थिति में उसकी स्थिति वदत्तर हो कर एक दासी के समान और उसके पुत्र की स्थिति ऐसी हो जायेगी जैसी कि नगर में किसी साधारण स्त्री-पुरुप की होती है।

यह वात स्वयं मंथरा व उसकी एक अन्य दासी-सखी द्वारा कैकयी के कान में डाल दी गई। इस समय राम के विवाहोपरान्त उसको युवराज वनाये जाने का समाचार राज्य के मन्त्रियों के विचाराधीन ही था। सामान्य प्रजा को अभी यह विदित नहीं हुआ था।

जव मंथरा व उसकी सखी ने यह वात रानी को कही तो उसको विश्वास नहीं आया। उसका विचार था कि यह समाचार झूठ भी हो सकता है। इस पर भी वह कल्पना करने लगी थी कि यदि यह समाचार ठीक हुआ तो क्या सत्य ही उसकी व भरत की ऐसी दशा हो जायेगी? परन्तु एक विचार यह भी था कि कुछ भी हो, राम उसको वहुत ही सम्मान देता है और कौशल्या से अधिक स्नेह कैकेयी को करता है। राम को भरत भी अति प्रिय है। राम ही चारों राजकुमारों में श्रेप्ठ है। कुछ दिन इसी असमंजस की स्थिति में वीत गए परन्तु कोई घोपणा नहीं हुई। रानी के मन में एक विश्वास यह भी था कि राजा उसको सवसे अधिक मान देते हैं क्यों कि वह तीनों रानीयों में सवसे सुन्दर और छोटी है। पिछले युद्ध में उसने राजा की वहुत सहायता भी की थी इसलिए कुछ भी वात हो, राजा सवसे पहले उसे ही वताएंगे।

कुछ दिन में वात आई गयी हुई ही थी कि राज्य-सभा में यह निर्णय हो गया कि राम का युवराज के रूप में अभिपेक किया जायेगा। किसी अज्ञात कारण से यह समाचार उचित घोपणा से पूर्व ही सामान्य प्रजा में प्रचारित हो गया।

मंथरा ने इस समाचार को अयोध्या नगर में हर्पोल्लास से कहा जाता सुना। अत: इस समाचार को सुनते ही वह अपनी रानी कैकेयी के सम्मुख उपस्थित हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बोली, "महारानी जी! कुछ सुना है?"

"क्या?"

"राम के राज्याभिषेक वाली बात सत्य है और कल हो रहा है।"

"सत्य?" मन के भाव छुपा कर रानी बोली, "यह तो अत्यन्त हर्ष की बात है।"

"महारानी जी! अयोध्या के कुँजड़े-कबाड़ी भी इस समाचार की चर्चा कर रहे हैं परन्तु यहाँ राजप्रासाद में इसकी गंध तक नहीं है।"

"इसमें कुछ कारण रहा होगा।"

"क्या कारण हो सकता है?" मंथरा ने माथे पर त्योरी चढ़ा कर पूछा।

"कोई राजनीति की बात रही होगी।"

"नहीं रानी जी! यह राजनीति की नहीं, वरन् यह राजप्रासाद में चल रही नीति की बात है। देखिये, आपको इस समाचार का ज्ञान नहीं और फिर यह कल ही हो रहा है। इस समय आपका पुत्र यहाँ नहीं है। वह ननिहाल में है। मुझे तो विश्वास है कि यह समाचार आपसे छुपाकर रखने के लिए प्रासाद में किसी को नहीं बताया गया।

"एक बात और है। यह समाचार आज से दो सप्ताह पूर्व ही साधारण प्रजा जानती थी। मेरी एक सखी व मैंने आपको बताया था परन्तु आपको विश्वास नहीं हो रहा था। आज प्रजा हर्ष मना रही है, आप आज भी अनजान हैं, यह देख मन विषाद से भर गया है।"

"पर मंथरा, यह सब क्यों?"

"महारानी! मैं इसके कुछ वर्ष उपरान्त की बात देख रही हूँ। महारानी कौशल्या राजमाता होंगी और आप तथा महारानी सुमित्रा एक सामान्य प्रजा की-सी स्थिति में हो जायेंगी। जानती हैं कि आपकी स्थिति क्या होगी? केवल मात्र निर्वाहकर्ता की। निर्वाहकर्ता का अभिप्राय यह होता है कि निर्वाह के लिये मिलने वाली वृत्ति पाने वाला।

"महारानी सुमित्रा की स्थिति तो फिर भी आपसे अच्छी होगी। उनका पुत्र लक्ष्मण राम के साथ उसके साये की भाँति रहता है। राम अवश्य लक्ष्मण को किसी अधिकारयुक्त कार्य पर लगा देगा, परन्तु भरत तो बाल्यकाल से ही ननिहाल में रहते हैं और उनका राम से अधिक हेलमेल भी नहीं रहा। अत: उनकी और आपकी स्थिति बहुत ही हीन होने वाली है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैकयी ने इस भावी धूमिल चित्र की कल्पना की तो उसका दिल भीतर-ही-भीतर बैठने लगा। इस समय तक रानी के मन में मंथरा व उसकी सखी द्वारा डाला गया विषबीज भी जड़ पकड़ रहा था। इस निराशा की अवस्था में उसने कह दिया, "मंथरा! कदाचित तुम ठीक कहती हो। परन्तु देखो न, इसका दोष तो मैं अपने भाग्य को ही दे सकती हूँ। यज्ञ में उपलब्ध दैवी-पाक हम तीनों रानियों ने एक साथ ही खाया था, परन्तु पुत्र कौशल्या के पहले हुआ।"

"शोक करने की आवश्यकता नहीं रानी जी! अपनी अर्जित स्थिति से लाभ उठाना चाहिए। पश्चिम के असुरों के साथ हुए युद्ध में आपने महाराज की सहायता की थी। यह सहायता उसी युद्ध में दो बार सम्पन्न हुई थी। उस समय महाराज ने प्रसन्न हो आपको दो वर दिये थे। आपके वे वर आज भी शेष और सुरक्षित हैं। आज अवसर है उन वरों को माँगने का।"

"परन्तु उसके उपरान्त तो युग बीत गया है।"

"महारानी, क्षत्रियों का वचन टलता नहीं। न सूर्य अपने स्थान से टल सकता है, न सूर्यवंशी क्षत्रिय का वचन। आप राजाजी को उन वरों का स्मरण कराईए और दो बातें माँगिये। एक यह कि राज्यभिषेक भरत का हो और दूसरा यह कि राम को देश निष्कासन की आज्ञा दे दी जाये।"

"यह क्यों?"

"इसका कारण कि राम यहाँ राज्य में रहता हुआ लोकप्रिय हो रहा है, भरत के राजा बन जाने पर भी वह राम की दया पर ही रहेगा। अत: कम-से-कम इतने काल के लिए जितने में आप समझती हैं कि भरत का राज्य सुदृढ़ हो सकता है, राम को वनवास दिलवा दीजिये।"

"कौन मानेगा इस बात को?"

"महारानी जी? आप सत्याग्रह कर दीजिये। खाना-पीना बन्द कर दीजिये। अपने को शोकाभिभूत प्रकट कीजिए। अपने अधिकारों के लिए कुछ कष्ट सहन ही तो तपस्या कहलाती है। तपस्या एक दैवी गुण है। आप यह करने में योग्य हैं।"

ज्योंही मंथरा की वाक्चातुरी का प्रभाव कैकयी पर हुआ कि उसके प्रासाद में दिये बुझा दिये गए। रानी ने अपनी वेणी खोल दी, भूषण उतार दिये और शोक के समय पहनने वाले सामान्य वस्त्र पहन, वह भूमि पर लेट गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: 18 :

राज्याभिषेक की तैयारी के कारण वह दिन राजा के लिए वहुत थकावट वाला और लम्वा रहा। मध्यरात्रि के समय महाराज दशरथ को अवकाश मिला। राम के युवराज पद पर आसीन करने का समाचार सवसे पहले अपनी सबसे प्रिय रानी कैकयी को सुनाने के लिये पहुँचे परन्तु कैकेयी के भवन की शोकयुक्त अवस्था देख वह स्तव्ध खड़े रह गये। उन्होंने एक दासी से पूछा, "यहाँ अन्धकार क्यों है?"

दासी जानती हुई भी वता नहीं सकी। उसने कह दिया "महाराज, मैं नहीं जानती। महारानी जी भीतर हैं।"

राजा विस्मय-ग्रस्त भीतर के आगारों में पहुँचे तो वहाँ की अवस्था और भी बुरी देख वह लम्वे-लम्वे पग उठाते हुए अन्त:पुर में जा पहुँचे और वहाँ रानी के आगार में सर्वथा अन्धकार देख आवाज देने लगा, "महारानी! महारानी कैकेयी!"

उनके मन में भय समा गया था कि किसी प्रकार की दुर्घटना हो गयी है। महाराज के कई वार पुकारने पर एक धीमी-सी आवाज़ आयी, "परमात्मा का धन्यवाद है कि आपको यहाँ आने के लिए अवकाश मिल गया है।"

आवाज की दिशा में दशरथ गये तो अन्धेरे में उनका पाँव किसी से टकराया और वह गिरते-गिरते वचे। यह कैकेयी थी।

"अरे! तुम यहाँ किसलिए पड़ी हो?" दशरथ ने पूछ लिया।

"मैं वहीं हूँ जहाँ आपने मुझे पटक दिया है।"

"मैंने? और यह अन्धकार भी मैंने किया है क्या?"

"हाँ, महाराज! अव आप आये हैं तो प्रकाश कर दीजिये।"

दशरथ ने ताली बजायी। दासी आयी तो महाराज ने आज्ञा दी, "प्रकाश करो।"

अव उस वड़े आगार में एक धीमा-सा प्रकाश कर दिया गया। महाराज रानी के समीप भूमि पर ही वैठ गये और पूछने लगे, "क्या कष्ट है देवी! मुझे तुरन्त सूचना क्यों नहीं भेजी?"

"ढोल-नगाड़ों के तुमुलनाद में यहाँ की क्षीण ध्वनि आप तक कैसे पहुँचती?"

"रानी! कुछ स्पष्ट वात कहो। आज हम वहुत प्रसन्न हैं। आज माँगो जो मन में आये। वर माँगो, हम देंगे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
"पहले दिये वर और वचन का क्या करूँगा?"

"कौन-से वचन पूरे नहीं किये?"

अब कैकेयी उठकर भूमि पर बैठ गयी और माथे पर त्योरी चढ़ाकर बोली, तो अवस्था वड़ी हो जाने के साथ स्मृति भी क्षीण होने लगी है?"

"हाँ। यह बात तो है, परन्तु तुम तो बूढ़ी नहीं हुई। रानी स्मरण करा दो तो हम उनको भी पूरा कर देंगे।"

कैकेयी ने स्मरण कराया। उसने कहा, "एक बार पश्चिम देश में असुरों से युद्ध करते हुए आप असुरों से घिर गये थे और आपका रथ टूट गया था। आपको स्मरण है कि तब क्या हुआ था?"

"ओह! याद आ गया। उस युद्ध में दो बार तुमने हमारी जान बचायी थी और हमने दो वर दिये थे। अच्छा, पहले उन्हीं को माँगो। बताओ, हम क्या करें कि हमारी रानी इस कोप को छोड़कर हम पर प्रसन्न हो जाये?"

"माँगूँगी। पर मैं जानती हूँ कि आप उस बात को पूरा नहीं करेंगे।"

"कैसे जानती हो कि हम अपना दिया वचन पालन नहीं करेंगे? कभी पहले भी ऐसा हुआ है?"

कैकेयी ने आँखें मूँद कह दिया, "हाँ; पहले तो आपने कभी अपना वचन भंग नहीं किया, परन्तु अब मन कहता है कि आप वचन से बदल जायेंगे।"

"नहीं रानी! माँगो! रघुकुल की रीति है, प्राण जा सकते हैं, पर वचन नहीं। माँगो, आज अपने दो वर माँग ही लो!"

"तो सुनिये महाराज! मैं चाहती हूँ कि भरत को युवराज पद पर आसीन किया जाए और राम को चौदह वर्ष तक वनवास की आज्ञा दे दें।"

राजा दशरथ तो सन्न रह गए, जैसे सीधे नभ से धरती पर आ गिरे। अवाक् रानी का मुख देखते रह गए। कितनी देर तक रानी के चेहरे पर बितर बितर देखते रहे।

तब रानी ने व्यंग्य से कहा "छोड़ो राजन अपने क्षत्रीय सूर्यवंश की परम्परा का अभिमान! अपने वचन आप क्या पूरा करेंगे?"

अब राजा दशरथ कैकेयी से युक्ति करने लगे। वह चाहते थे कि रानी कुछ और वस्तु माँग ले, परन्तु कैकेयी नहीं मानी। जब बहुत समझाने-बुझाने पर भी रानी नहीं मानी तो दशरथ मौन हो गये। इस पर कैकेयी ने पुन: ताना देकर कह दिया, "बस हो गयी बात पूरी? अब आप जाईये और भविष्य में रघुकुल की रीति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
की डींग मत हाँका करिये।"

राजा मुख से कह नहीं सके कि वह वचन का पालन करेंगे अथवा नहीं।

कैकेयी को एक बात सूझी। उसने राम को बुला भेजा और उसके सम्मुख उसके पिता के वचन व उनकी मनस्थिति का वर्णन कर दिया।

राम क्षत्रिय स्वभाव के पितृभक्त युवक थे। ऐसा वीर जिसके लिए जीवन और मरण खेल समान हो, उसके लिए राज्य जैसी वस्तु का त्याग बहुत ही सामान्य बात थी। उसने कह दिया, "माताजी। आप चिन्ता न करें। पिता द्वारा आपको दिया वचन पूरा होगा, मैं कल प्रात: काल ही वन के लिए प्रस्थान कर दूँगा।"

: 19 :

राम वन जाने को तैयार हो गये। रामभक्त लक्ष्मण उस समय साथ ही था। क्रोधित लक्ष्मण का स्पष्ट कहना था, "भाई, राजा की आज्ञा धर्मयुक्त नहीं है। अत: आप वन को मत जाइये और यदि भरत राजा बनता है तो मैं उससे तथा अयोध्या की सम्पूर्ण सेना से युद्ध कर, उसको परास्त कर यह राज्य उससे छीन लूंगा।"

राम ने कहा, "लक्ष्मण, यह समय क्रोध करने का नहीं है। मुझे राज्य का लोभ नहीं है। मेरे लिए पिता के वचन का पालन ही धर्म है। पिता ने माता कैकेयी को जो वचन दिये हैं, उनका पालन करना पुत्र का धर्म है। अत: मैं निश्चित ही वन को जाऊँगा।"

लक्षमण ने कहा, "भैया! आप मेरे प्राण हैं। आपके विना मैं जीवित नहीं रह सकता। अत: आपकी सेवा के लिए मैं आपके साथ चलूँगा।"

"नहीं लक्ष्मण वनवास की आज्ञा केवल मेरे लिए है।" राम ने कहा।

"आप मुझे रोकेंगे, तो भी मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन करके आपके साथ चलूँगा।"

समस्या सीता की उपस्थित हुई। उसने भी स्पष्ट कह दिया, "पत्नी का धर्म है कि पति के साथ रहे। अत: मैं भी वन जाऊँगी। मैं पति के सुख-दुख की भागीदार हूँ।"

विवश राम दोनों को साथ लेकर वन को जाने की तैयारी करने लगे।

इस पर राजप्रासाद में कोहराम मच गया। कुछ देर पहले जहाँ खुशियाँ नाच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रही थीं, अव मातम छाना आरम्भ हो गया। राम, लक्ष्मण तथा पुत्रवधु सीता, तीनों के वन को चले जाने का समाचार सुन राजा दशरथ अति व्याकुल हो उठे।

राम की माँ कौशल्या राजा को वार-वार कोसने लगीं। इस पर राजा दशरथ वोले, "कौशल्या! अव अधिक मत कोसो। अव मैं और नहीं सह सकता। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि अव मैं जीवित नहीं रह सकता।

"जीवन में सुख-दुख अकारण नहीं होते। मुझे पुत्र वियोग हो रहा है यह भी मेरी एक वहुत वड़ी भूल के कारण ही है। उसी को स्मरण कर मैं व्याकुल हो रहा हूँ और मुझे अपना अन्त समीप दिख रहा है।"

"अच्छा राजन! मैं अव कुछ नहीं कहूंगी। आप शान्त हो जाइये।" कौशल्या ने कहा।

"देवी! मैं अपना पापकर्म तुमसे कहकर ही शान्त हो सकूँगा। यही मेरा प्रायश्चित है। सुनो, मैं सुनाता हूँ।"

राजा दशरथ ने अपनी युवावस्था की एक घटना सुना दी। अभी उनका विवाह नहीं हुआ था। उन्हें जंगली जीवों का शिकार अति प्रिय था। धनुपवाण पर उनका वहुत अभ्यास था। विना लक्ष्य को देखे, केवल आवाज़ सुनकर वह निशाना वाँध तीर चलाकर शिकार किया करते थे।

एक रात्रि वह जंगल में शिकार खेलने निकले। सरयू नदी के किनारे-किनारे वह जा रहे थे। दूर उन्हें पानी की आवाज़ सुनाई दी। यह समझ कि कोई जंगली पशु जल पीने आया है। उन्होंने आवाज़ को लक्ष्य कर वाण छोड़ दिया। पर अगले ही क्षण एक आदमी की पुकार सुनाई दी, "हाय मैं, मर गया।"

"मुझे तुरन्त अपनी भूल का ज्ञान हुआ। यह तो कोई मनुष्य निकला जो पानी पीने आया था। मैं भागा-भागा उसके पास जा पहुँचा। मैंने देखा एक युवक भूमि पर लेटा हुआ है और उसके वक्ष में वाण लगा है। वह कराह रहा था। मैंने अपनी भूल समझ उससे क्षमा माँगी और अपना परिचय दिया। उस युवक ने कहा, 'राजन! यह आपने क्या किया? मैं यहाँ अपने अन्धे माता-पिता के पीने के लिए जल लेने आया था। अव मैं नहीं वचूंगा। वे प्यास से तड़प रहे होंगे। हाय, उन्हें जल कौन पिलायेगा?

कुछ समय साँस ले वह वोला, 'राजन्, आप मेरे वक्ष से यह वाण निकालिए, जिससे मेरी पीड़ा शान्त हो और मेरे प्राण शान्ति से निकल सकें। फिर आप पात्र में जल ले जाएँ और मेरे माता-पिता की प्यास वुझाएँ। यह कह उसने वह स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
वता दिया, जहाँ उसके माता-पिता जल की प्रतीक्षा में वैठे थे।

'मैंने उसके वक्ष से वाण निकाला और वह युवक अपनी पीड़ा से मुक्त हो मर गया। तव मैंने जल से भरा पात्र लिया और उस व्यक्ति द्वारा वताये स्थान पर चला गया।

"वास्तव में उस आदमी के वृद्ध माता-पिता प्यास से व्याकुल वैठे पुत्र की प्रतीक्षा कर रहे थे। राजा ने जल से भरा पात्र उनके सामने रख दिया। वृद्ध व्यक्ति वोला, 'वेटा! तुमने देर क्यों कर दी? हम प्यास से व्याकुल हो रहे थे।'

"माता-पिता दोनों अन्धे थे। इस कारण वह मुझे अपना पुत्र ही समझ रहे थे। मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। इस पर उस वृद्ध को सन्देह हुआ। उसने पूछा, 'तुम कौन हो? तुम हमारे पुत्र श्रवण नहीं हो। श्रवण कहाँ है? जल्दी वताओ, नहीं तो हम यह जल नहीं पीयेंगे।'

मैंने उत्तर दिया, "भगवन्! मैं दशरथ हूँ। भूल से मेरा वाण आपके पुत्र को लग गया और उसने यह जल आपके लिए भेजा है यह आप ग्रहण कीजिये।"

'परन्तु वह कहाँ है?' उन्होंने पूछा। मेरा उत्तर था, "उसने प्राण त्याग दिये हैं। मैं पापी हूँ अव आप मुझे क्षमा कीजिए।

"यह दु:ख भरा समाचार सुन माता-पिता दोनों विह्वल हो रोने लगे। उन्होंने कहा, 'दशरथ! तुम हमें हमारे पुत्र के पास ले चलो। हम देख नहीं सकते पर हम उसके शरीर को छू तो सकेंगे। इससे ही हमें शान्ति मिलेगी।'

"मैं दोनों को श्रवण के शव के पास ले गया। माता-पिता दोनों ने श्रवण के मुख पर तथा शरीर पर हाथ फेरा। इससे उनका दु:ख और वढ़ गया। उन्होंने विलाप करते हुए कहा, 'दशरथ! तुमने हमारा सव-कुछ छीन लिया। हमारा इकलौता वेटा, हम अन्धों का एक मात्र सहारा समाप्त हो गया। अव हम जीवित नहीं रह सकते। हम प्राण त्याग रहे हैं।'

'तुमने क्षमा माँगी है, परन्तु हम तुम्हें न दण्ड दे सकते हैं न क्षमा। इस पर भी भगवान् तुम्हें इसका दण्ड देगा। जैसे हम अपने पुत्र के वियोग में प्राण छोड़ रहे हैं, उसी प्रकार तुम भी एक दिन अपने पुत्र के वियोग में प्राण छोड़ोगे।'

"इतना कह दोनों ने वहीं प्राण त्याग दिये।"

दशरथ ने यह कथा कौशल्या को सुनाई और कहा, "आज मैं अनुभव कर रहा हूँ कि उनका शाप फलीभूत हो रहा है। कौशल्या, अव मैं जीवित नहीं रह सकता। मेरा अन्त आ गया है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुरन्त ही राजवैद्य को बुलाया गया परन्तु उसके आने से पूर्व ही राजा दशरथ के प्राण-पखेरू उड़ गये।

: 20 :

दशरथ मन से तो चाहते थे कि राम वन को न जाये, परन्तु इस बात को वह अपने मुख से नहीं कह सके। वह चाहते थे कि कोई कैकेयी को समझाये। कुछ मन्त्रियों ने राम को समझाने का यत्न भी किया था कि माता द्वारा मांगे गए इन अधर्मयुक्त वरों का पालन करने से इन्कार कर दे।

युक्ति देने वालों मे सबसे प्रबल तर्क लक्ष्मण का था। लक्ष्मण का कहना था कि यदि गुरु भी कोई अयुक्तियुक्त बात कहे तो राजा को उसकी अवज्ञा करना पाप नहीं होता।

परन्तु राम ने कह दिया "मैं अभी राजा नहीं हूँ। मैं तो पिता का आज्ञाकारी पुत्र मात्र हूँ। और इसमें अयुक्तिसंगत बात तो है ही नहीं! यह तो मात्र पिता का दिया वचन है।"

इसी प्रकार सुमन्त ने भी राम को समझाया। राम का उत्तर सर्वथा स्पष्ट था "राज्य भी पिता का, वचन भी पिता का। जब राज्य का अधिकारी आप मुझे मान रहें हैं तो वचन पालन का अधिकारी भी तो मैं हूँ। मेरे लिये इस तुच्छ राज्य-पद से अधिक महत्वपूर्ण पिता का वचन है, अत: पिता के वचन को असत्य सिद्ध क्यों करूँ?"

क्या राम ने वन जाना स्वीकार कर भूल की थी? राजा दशरथ को क्या अधिकार था कि वह राम के वनवास का वचन दे? राम, सीता और लक्ष्मण का वह व्यवहार महान् जीवनोद्देश्यों से सम्बन्ध रखता है। पिता ने किसी को एक वचन दिया था और वह बिना राम के वन गये पालन नहीं हो सकता था। राम ने इस वचन को पितृ-ऋण ही माना तथा इसे उतारने के लिए वन जाना स्वीकार किया।

सीता ने पति के साथ रहना स्वीकार किया। यह भारतीय संस्कृति और सभ्यता के अनुरूप हो या न हो परन्तु एक पत्नि द्वारा त्याग का अनुपम तो है ही उदाहरण ही है। इसमें विशेषता यह है कि वनवास उसके पति को मिला था। उसके लिये वन में जाने की बात नहीं थी। वह यदि गयी थी तो अपने जीवनसाथी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रति अपना कर्त्तव्य और निष्ठा पालन करने के लिए ही। उसने अपने को वास्तविक सुख-दुख का साथी सिद्ध कर दिया।

सीता ने राम को यह नहीं कहा कि वह अपने पिता का वचन पालन न करे। यह कहना उसने अपने अधिकार के वाहर समझा। राम के साथ जाना अथवा न जाना उसके अपने विचार का विषय था। उसने निश्चय राम के साथ जाने के पक्ष में किया था। इसमें उसे अपार कष्ट भी हुआ, परन्तु उसने चौदह वर्ष के वनवास के दिनों में या उसके उपरान्त भी कभी मुख से उफ नहीं कहा जो सीता की महानता थी, जिससे उसका नाम अमर हो चुका है। आज युगों के पश्चात भी साधारण जन, जय सिया-राम या जय सीता-राम कहते हैं।

लक्ष्मण की समस्या भिन्न थी। वह राम से प्रेम करता था और उस पर श्रद्धा रखता था। उसकी मान्यता थी कि विना राम के उसका कोई अस्तित्व नहीं अत: विना सोचे वन में राम को होने वाले कष्ट में भागीदार वनने के लिए चल पड़ा था। यही कारण है कि राम-लक्ष्मण का नाम एक साथ वीरता व प्रेम का प्रतीक वन गया है। लक्ष्मण की पत्नी ने पति के साथ जाना स्वीकार नहीं किया, कदाचित माता सुमित्रा की सेवा के लिए। यह अन्तर तो उर्मिला और सीता के भावों को प्रकट करता है और यही अन्तर कारण वन गया कि उर्मिला का नाम केवल इतिहास पढ़ने वालों को ही ज्ञात है। उसका राम की कथा में कोई स्थान नहीं।

वास्तव में कैकेयी को समझाने और उस पर दवाव डालकर राम के प्रति उसके भय का निवारण करने का उचित यत्न नहीं किया गया।

सुमन्त ने एक वार कैकेयी से कहा था कि वह इतनी कठोर माँग न करे, परन्तु कैकेयी ने उसे डाँट दिया था। यदि यही वात वशिष्ठ कहते तो कदाचित् कैकेयी मान जाती और राम वन को न जाते। तव न राम-रावण युद्ध होता और न ही आज राम विश्व के कोटि-कोटि मानवों के पूज्य होते।

राजा दशरथ का देहान्त हो गया। यदि वह भरत के लौटने तक जीवित रहते तो कदाचित् पुत्र की प्रेरणा पर कैकेयी अपना वचन वापस ले लेती और पिता वन में जाकर पुत्र को वापस ले आता।

जव श्रीराम अयोध्यापुरी से वनवासियों के से वस्त्र पहने हुए निकलने लगे तो पुरवासियों ने मार्ग रोक लिया और इस घोर अनर्थकारी कार्य के लिए हाहाकार करते हुए आग्रह करने लगे कि राम वन को न जाये।

श्रीराम ने वहुत स्पष्टता से प्रजा और राजा की मर्यादा वताते हुए कहा, "आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रजाजन हो। आपको राज्य में रहते हुए राज्य नियमों का पालन कर अपने धर्म का पालन करना चाहिए। राजा जो भी हो उसे प्रजा का पालन पिता के समान करना चाहिए। हाँ, यदि भरत अधर्माचरण करने वाला सिद्ध हो तो उसको राज्यच्युत करने का अधिकार विद्वान ऋषिजनों का है।"

पुरवासियों के लिए तो यह युक्ति का विषय नहीं था। वे तो श्रीराम से प्रेम-वश कह रहे थे कि वह अयोध्या में ही रहे, परन्तु जब राम नहीं माने तो वे सब बिना विचारे, प्रेमवश ही श्रीराम के साथ-साथ चल पड़े। यह उनकी श्रद्धा थी जो एक जननायक के प्रति थी।

रामरथ को घेरे हुए अयोध्या के रहने वाले सहस्त्रों ही नर-नारी, बाल-वृद्ध अपना घर-बार छोड़कर साथ-साथ चल पड़े।

श्रीराम का रथ नगर और फिर नगर के बाहर गाँवो में से होकर निकला। उस रथ के साथ जाने वाली भीड़ बढ़ती गयी। तमसा नदी के तट तक पहुँचते हुए यह इतना बड़ा जन-समूह हो गया कि रथ को चलाने वालों के लिए यह चिन्ता का विषय हो गया। सहस्त्रों नर-नारियों तथा बच्चों के खाने-पीने का तथा अन्य सुविधाओं का प्रबन्ध असम्भव हो गया। अत: राम, लक्ष्मण और सीता पुरवासियों को रात तमसा नदी के तट पर सोया छोड़, चुप-चाप वहाँ से चले गये।

कुछ दूर जाकर उन्होंने गंगा पार की और ऋषि भारद्वाज के आश्रम में जा पहुँचे। ऋषि भारद्वाज का आश्रम गंगा-यमुना के संगम स्थान, दोनों महानदियों के बीच के उस स्थान पर था, जहाँ से दोनों नदियों का संगम दिखायी देता था। ऋषि ने उन्हें चित्रकूट पर रहने की सम्मति दी और वहाँ का मार्ग बता दिया।

भारद्वाज आश्रम से चलकर राम और लक्ष्मण ने एक नौका से यमुना पार की और फिर चित्रकूट के वन में जा कुटिया बनाकर रहने लगे।

: 21 :

पति के देहान्त पर कैकेयी को समझ आने लगा था कि उसने क्या भूल कर दी है? जब भरत ननिहाल से आया और पिता के संस्कार-कार्य कर चुका तो कैकेयी को विदित हुआ कि जिसके लिए उसने राम को वन भेजा है, वह राज्य लेना ही नहीं चाहता।

उसने अपने पुत्र के लिए राज्य माँगा था और इस माँग की प्रतिक्रिया-स्वरूप

Central Library
168005
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके पति की देहान्त हो गया। भरत ने मंथरा और माता कैकेयी को पिता की मृत्यु का दोषी माना और अपना राज्याभिषेक अस्वीकार कर दिया और यह निश्चय पुरवासियों तथा माता कौशल्या को वता कर इस घटनाक्रम के लिए क्षमा मांगी और अश्वासन दिया कि वह श्रीराम के पीछे-पीछे वन में जायेगा और उन्हें वापस लाये विना नहीं लौटेगा।

कैकेयी अपने कृत्य पर लज्जित थी। वह पुत्र के इस विचार को सुन, भरत के साथ वन जाने के लिए तैयार हो गयी।

भरत जव राम को वन से लौटा लाने के लिए चला तो अयोध्या का पूर्ण मन्त्रिमण्डल, प्रमुख पुरवासी और एक वड़ा सैनिक दल साथ था। भरत के साथ उसकी तीनों मातायें, अन्त:पुर की अन्य स्त्रियाँ, छोटा भाई शत्रुघ्न भी गये।

इस प्रकार एक विशाल जन-समूह राम को वापस लाने के लिए चल पड़ा। मार्ग में चलते हुए वे राम की वन यात्रा के चिन्ह देख रहे थे। उन मार्ग चिन्हों के सहारे चलते हुए वे सव दल-वल सहित भारद्वाज आश्रम जा पहुँचे।

मुनि ने जव भरत इत्यादि को देखा तो पूछ लिया "भरत कैसे आये हो?"

"मुनिवर! पितृ तुल्य भाई श्रीराम को वापस ले जाने के लिए।"

"और सेना साथ लेकर?"

"भगवन्! भाई राम की अयोध्या-वापसी को धूम-धाम से सम्पन्न करने के लिए सेना लाया हूँ। मन्त्रियों को साथ इसलिए लेकर आया हूँ कि ये युक्ति से और धर्म-व्यवस्था से भैया को समझा सकें कि उनको अयोध्या लौट चलना चाहिए।

"अपने कथन को वल-युक्त वनाने के लिए मुख्य-मुख्य पुरवासियों को भी साथ लाया हूँ।"

ऋषि के मन में विश्वास वैठ गया कि राम लौट जायेगा। इसी प्रसन्नता में उन्होंने भरत का उसके सव साथियों सहित आश्रम की ओर से भारी सत्कार किया।

भरत, राज्य परिवार, मन्त्री-गणों तथा पुरवासियों और सेना के खाने-पीने तथा रात्रि व्यतीत करने का सर्वोतम प्रवन्ध वहीं आश्रम में कर दिया गया। इससे सभी जन जो भरत के साथ थे, अति आनन्दित हुए।

अगले दिन भरत इत्यादि मुनिजी से चित्रकूट का मार्ग पूछने गये। भरत ने सत्कार के लिए ऋषि का धन्यवाद कर दिया। भरत ने कहा, "भगवन! आपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तो अतिथिसत्कार में राजाओं को भी मात कर दिया है।"

"भरत! हम बहुत प्रसन्न हैं कि तुम अत्यन्त धर्मनिष्ठ व्यक्ति हो। जहाँ राम के त्याग-तपस्या और पितृ-ऋण की बात सुन चित्त अति प्रसन्न हुआ था, वहाँ तुम्हारा धर्म के तत्त्वयुक्त व्यवहार से चित्त पहले से भी अधिक प्रफुल्लित हुआ है। इसी प्रसन्नता के अनुरूप ही हमारे आश्रमवासियों ने ये कुछ श्रद्धा के फूल तुम पर बरसाए हैं। मेरा आशीर्वाद है कि तुम्हारे स्नेह व त्याग की भावना का उदाहरण युगों-युगों तक तुम्हे अमर कर देगा। तुम्हारी कामना पूर्ण हो।"

भरत ने मुनिजी से पूछ, "यहाँ से आर्य राम किस ओर गये हैं?"

मुनिजी ने बताया, "आजकल राम चित्रकूट पर्वत पर रह रहे हैं। जाओ और उन्हें वापस अयोध्या में ले जाकर राज्यासीन करो। तुम्हारा कल्याण हो।"

भरत भारद्वाज मुनि का आशीर्वाद ले चित्रकूट को चल पड़ा। यमुना पार कर चित्रकूट पर्वत के चरणों में पहुँचे तो विशाल सेना तथा रथों, घोड़ों इत्यादि के चलने से उड़ती हुई धूल से लक्ष्मण के मन में शंका होने लगी कि कदाचित् भरत उनकी हत्या करने के लिए वहाँ सेना सहित आया है। वह एक वृक्ष पर चढ़कर सेना के आगे-आगे सूर्यवंशियों का ध्वज फहराया जाता पहचान राम से अपनी आशंका प्रकट करने लगा।

राम ने पूछा, "लक्ष्मण! तुम यह बुरी शंका किसलिए मन में ले आये हो?"

"भैया!" लक्ष्मण ने कहा, "यह राजनीति है। संसार में सब आप जैसे धर्म का मर्म जानने वाले नहीं हैं। आपका स्नेह और आदर माता कैकयी के लिए कितना था, अपनी ईर्ष्या में वह क्या कर गईं, यह देख कर मन में शंका उत्पन्न हुई है।"

"देखो लक्ष्मण! मैं तो इसमें कोई चिन्ता की बात नहीं देखता। यदि भरत हमें मिलने के लिए आया है तो उचित ही है। यदि हमें वापस ले चलने के लिए आया है तो भी अब मैं उससे राज्य नहीं लूँगा और यदि तुम्हारी आशंका सत्य है कि वह मन में द्वेष-भाव लेकर आया है तो मैं अयोध्यावासियों का इतना स्नेह और आदर पा चुका हूँ कि उन पर बाण चलाते समय मेरी बाहें निस्तेज और बलहीन हो जायेंगी। भरत का अनिष्ट मैं सोच भी नहीं सकता। वह पिताजी का उतना ही प्रिय पुत्र रहा है, जितना मैं रहा हूँ।

"अतएव लक्ष्मण! मुझे तो किसी भी दशा में चित्त में चिन्ता अथवा भय नहीं। देखो, अयोध्या नरेश के आने की शान्ति से प्रतीक्षा करो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
लक्ष्मण भाई की युक्ति और मनोद्गार सुन चुप कर गया और आने वालों के वहाँ पहुँचने की प्रतीक्षा करने लगा।

एकाएक वृक्षों के झुरमुट में से मुनि वशिष्ठ तथा अन्य मन्त्रीगण निकलते दिखायी दिये। उनके साथ भरत, शत्रुघ्न और माताओं को आते देखा तो तीनों आगे बढ़े और माताओं तथा गुरुजनों के चरण-स्पर्श करने लगे। भरत और शत्रुघ्न आगे आ बड़े भाई के चरण स्पर्श करने लगे।

माताएँ तथा भरत इत्यादि सब शिष्ट वर्ग तीनों को वल्कल पहने सामने खड़े देख प्रेम और दु:ख के आँसू बहाने लगे।

भरत नहीं जानता था कि किस प्रकार पिता के देहान्त का समाचार सुनाये। वह बात करने में कठिनाई अनुभव करता हुआ चुप था।

जब सब चुपचाप खड़े आँसू बहा रहे थे, तब महर्षि वशिष्ठ आगे बढ़ राम की पीठ पर प्यार से हाथ फेरते हुए समाचार देने लगे, "राम! तुम्हारे पिता महाराज दशरथ तुम्हारे वन को चले आने के उपरान्त अति दु:ख अनुभव करते हुए स्वर्ग सिधार गये हैं। भरत पिता के देहावसान का समाचार पाकर अयोध्या आया। उनका दाहसंस्कार तथा अन्त्येष्टि-क्रिया कर वह अब राज्याभिषेक के लिए तुम्हें वापस अयोध्या ले जाने के लिए आया है।"

इस शोक-समाचार से तो तीनों ही विह्वल हो रोने लगे। सभी इस शोक मिलन के उपरान्त मन्दाकिनी के किनारे पहुँच हाथ-मुख धो वहीं नदी तट पर बैठकर वार्तालाप करने लगे।

बात भरत ने आरम्भ की। उसने कहा, "भैया! अयोध्या का सिंहासन सूना पड़ा है। अब आप चलो और उसे सुशोभित करो।"

"भरत! पिताजी अयोध्या का राज्य तुम्हें दे गए हैं। इस कारण वह तुम्हें सुशोभित करना चाहिए। वह सिंहासन यदि अभी तक सूना पड़ा है तो भूल कर रहे हो।"

"परन्तु भैया! अधिकारी तुम हो?"

"राज्याधिकार कैसे प्राप्त होता है? इसके तीन ही उपाय हैं। प्रथम है राजा का पुत्र होने पर उनके द्वारा अभिषेक करने से। द्वितीय है, राज्य के विद्वानों द्वारा निर्वाचित करने से; तृतीय उपाय है समर में जीतने से।

"तीसरा उपाय तो है नहीं। हो सकता नहीं। अयोध्या नगरी महाराज इक्ष्वाकु के काल से आज तक अजेय रही है। दूसरा उपाय भी वर्तमान परिस्थिति में नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
चल सकता। महाराज की मृत्यु से पूर्व की इच्छा कौन अयोध्या का विद्वान् अस्वीकार करेगा? यहाँ केवल पहला उपाय ही सत्य है। महाराज ने माता कैकेयी के पुत्र भरत को अयोध्या का राज्य सौंपा है। अतः भरत! तुम अयोध्या पर राज्य करो। यही पिताजी की इच्छा थी। पिताजी तुमको राज्य के अयोग्य नहीं मानते थे। मेरा अयोध्या के विद्वानों से आग्रह है कि स्वर्गीय महाराज की इच्छा की पूर्ति करें। जब तक तुममें वे कोई दोष नहीं देखते, उनको स्वर्गीय महाराज की बात माननी चाहिए। यही धर्म-व्यवस्था है।

"मैं पिताजी के दिए वचन को परमात्मा की आज्ञा के तुल्य मानता हूँ। इस कारण तुम जाओ और राज सिंहासन को सुशोभित करो।"

श्रीराम के युक्तियुक्त एवं धर्मानुसार वचन सुन सभी निरुत्तर हो गये। इस पर वशिष्ठ मुनि बोले, "यह अयोध्या में चलकर विचार कर लेंगे। राम! तुम अब वापस चलो। माता कैकेयी, जो महाराज से तुम्हारे वन जाने की बात कह रही थीं, अब वह पश्चाताप करती हुई तुम्हें वापस ले जाने के लिए साथ ही आई हैं। अब तुम पर अयोध्या लौटने का प्रतिबन्ध नहीं है।"

"पर मुनिश्रेष्ठ! वह प्रतिबन्ध माताजी ने लगाया था क्या? मैं ऐसा नहीं समझता! पिताजी अथवा माता जी ने मुझे यहाँ वन में आने की आज्ञा नहीं दी थी। यह तो पिताजी का वचन था जो वह मुख से नहीं कहते थे। उनका मौन प्रेम-वश था, परन्तु वह वचनबद्ध थे। उनकी इस वचनबद्धता से उनको मुक्त करने के लिए ही मैं यहाँ चला आया हूँ। यह पितृऋण तो मुझे चुकाना ही होगा।

"माताजी को यदि कुछ वापस लेना है तो पिताजी से लेना है। मुझे उन्होंने न तो वन जाने की आज्ञा दी थी और न ही मैं उनकी आज्ञा से यहाँ आया हूँ। पिताजी के देहान्त के उपरान्त मैं उनका वचन भंग करूँगा तो जन्म-जन्मान्तर तक पाप का भागी बना रहूँगा।

"अतः गुरुवर! मुझे क्षमा करें। मैं चौदह वर्ष का वनवास काल व्यतीत हो जाने के पूर्व किसी भी नगर में नहीं जा सकता।"

इस कथन ने बात समाप्त कर दी। सब एक-दूसरे का मुख देखते रह गए परन्तु भरत विशाद में डूब गया। वह अपने मन में स्वयं को और अपनी माँ को सीता, राम व लक्ष्मण के कष्ट का कारण मानता था। वह तो किसी भी सूरत में राजा पद स्वीकार करने को तैयार नहीं था। अब आगे बढ़ राम से उसकी खड़ाऊँ माँगने लगा। उसने कहा, "भैया! ये पादुकाएँ मुझे दे दो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इनको किसलिए माँग रहे हो?"

"जब तक आप चौदह वर्ष के वनवास का व्रत पालन कर लौट नहीं आते, तब तक ये अयोध्या में अपका प्रधिनिधित्व कर राज्य करेंगी। मैं वहाँ पर केवल आपका सेवक बन ही रह सकता हूँ।"

"पर तुम राज क्यों नहीं करोगे?"

"भैया! मैंने वह राज्य पिताजी से प्राप्त कर आपको लौटा दिया है। आप जब तक वहाँ नहीं आते, ये राज्यासीन रहेंगी और इनका अनुचर बनकर मैं राज्य-कार्य देखूंगा।"

इस पर गुरु वशिष्ठजी बोल उठे, "हाँ, यह ठीक है। पिता की आज्ञानुसार भरत ने राज्य स्वीकार किया। अब यह उसे बड़े भाई के चरणों में अर्पण कर सकता है। भाई चौदह वर्ष तक आ नहीं सकते; इस कारण भाई के अनुचर तब तक कार्य चलायें। भाई की ये पादुकाएँ तब तक अपने स्वामी का प्रधिनित्व करेंगी।"

इस प्रकार भरत और साथीयों को राम ने लौटा दिया। भरत बड़े भाई की पादुकाएँ ले अयोध्या लौट गया।

: 22 :

चित्रकूट का वन अति सुन्दर और बारह मास विकसित होने वाले पुष्पों से लदा रहता था। मन्दाकिनी नदी में जल-विहार करते हुए वन-पशु अति लुभायमान दृश्य प्रस्तुत करते थे। सीता अयोध्या को विस्मरण करने लगी थी।

वहाँ साधु-सन्त महात्मा थे। वे सब इन तीनों से हेल-मेल रखने लगे थे। सीता को भी वहाँ का वातावरण और वहाँ रहने वाले साधु, सन्त, ऋषि, अनुकूल ही प्रतीत होते थे।

समीप ही एक ऋषिआश्रम था। उसके एक कुलपति भी थे। वह एक वृद्ध ऋषि थे। प्राय: मध्यांतर कुलपति राम की कुटिया के बाहर आ जाते थे और राम तथा लक्ष्मण उनसे अनेक विषयों पर वार्तालाप किया करते थे।

एक दिन कुलपति ने उस बस्ती का इतिहास बता दिया। कुलपति ने कहा, "हम यहाँ लगभग दो सौ प्राणी हैं। यहाँ से पूर्व हम दण्डकारण्य में रहते थे। वहाँ राक्षसों ने उधम मचाना आरम्भ कर दिया तो हम उस स्थान को छोड़ पूर्व में इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर आ गए। लंकापुरी में रावण के सिंहासनारूढ़ होने से पूर्व तपस्वी लोग दक्षिण के नीलगिरी पर्वत तक फैले हुए थे। रावण के लंका का राजा बनने के साथ ही हमें वह क्षेत्र खाली कर देना पड़ा।

"राम! पहले मैं उन दिनों किष्किन्धा के एक वन में रहता था। वहाँ वाली नाम के एक राजा ने अपने भाई सुग्रीव की पत्नी को बलपूर्वक अपने अन्त:पुर में रख लिया और जब उसने सुग्रीव की हत्या करने का यत्न किया तो सुग्रीव व उसके कुछ साथी राजधानी छोड़ वन में जाकर रहने लगे। वाली सुग्रीव को ढूँढ़ता रहता है। उसके सैनिक वन-वन सुग्रीव की खोज करते हैं और इस खोज में वनवासी ऋषि-मुनियों को कष्ट देते हैं। अत: मैंने वह स्थान छोड़ दिया। जब पंचवटी में पहुँचा तो रावण के सैनिक कष्ट देने लगे। प्राय: मुनि इस क्षेत्र को सुरक्षित देख यहाँ चले आये। यहाँ रहते हुए हमें पाँच वर्ष के लगभग हो चुके हैं।

अब राक्षस लोग इधर भी बढ़ रहे हैं। पिछले वर्ष महिष्मति के राजा अर्जुन का देहान्त हो गया है और रावण स्वयं को उसके साथ हुई सन्धि से मुक्त हो गया समझ उसके राज्य में भी राक्षसों को भेज रहा है।"

"तो अर्जुन का पुत्र उनको रोकता नहीं?"

"बात यह है कि राक्षसों की नीति अब युद्ध करने की नहीं है। सेना तो सेना से युद्ध करती है, परन्तु ये राक्षस लुकछिपकर युद्ध करते हैं। रात के समय अस्त्र-शस्त्र हीन लोगों पर आक्रमण कर देते हैं। एक परिवार पर पचास-पचास आ धमकते हैं। उनके स्त्री-वर्ग को पकड़ कर ले जाते हैं, शेष परिवार की हत्या कर उनका माँस खाते हैं। राज्य इसमें कुछ कर नहीं सकता। कभी राजा की सेना इधर आती भी है तो ये राक्षस भागकर जंगलों में घुस जाते हैं। सैनिक निर्जन स्थान को देख लौट जाते हैं।"

राक्षसों की नीति यह है कि वे यहाँ एक-एक कुटिया पर रात के समय आक्रमण कर उसमें रहने वालों को मार कर दिन निकलने से पूर्व भाग जायेंगे। आप तो जानते ही हैं कि वन में हम सब एक स्थान पर इकट्ठे होकर रहना नहीं चाहते, इससे हमारे ध्यान में असुविधा रहती है और हमारे पूजा-पाठ में विघ्न पड़ता है। एक बात और है। वह यह कि एक ही स्थान पर इकट्ठे होकर रहना चाहें तो भी तब तक नहीं रह सकते, जब तक पक्के मकान, मार्ग और मलमूत्र को बाहर निकालने का प्रबन्ध न हो जाये। इससे आश्रम और बस्ती तो पुन: नगर के तुल्य हो जायेगा। हम लोग नगरों को छोड़ वन में इसी कारण आये हैं कि नगर का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जीवन हमारे जप-तप में बाधा डालता है।"

राम मुनियों के दृष्टिकोण को समझने लगे थे। वे लोग ब्राह्मण-स्वभाव रखने के कारण राज्य निर्माण नहीं कर सकते। वड़े बड़े नगरों में यदि सुविधायें हैं तो असुविधायें भी हैं। ये महानुभव उन असुविधाओं से वचने के लिए वन में कुटिया वनाकर रह रहे हैं। प्रत्येक परिवार ने एकान्त पाने के लिए दूर-दूर कुटिया वना रखी है।

राम को गम्भीर विचार में मग्न देख कुलपति ने कह दिया, "वन के मुनि लोग कुछ ऐसा विचार कर रहे हैं कि वे इस स्थान को छोड़ जायें और यमुना के किनारे पर जाकर रहना आरम्भ कर दें। हमारी सम्मति हैं कि आप भी हमारे साथ चल दें।"

राम ने कह दिया, "और यदि इन राक्षसों को यह विदित हो गया कि अव हम वहाँ निवास करते हैं तो ये वहाँ से भी हमें भगा देने का यत्न करेंगे। इस प्रकार भागने वालों के लिए तो कोई भी स्थान सुरक्षित नहीं रह जायेगा। यदि स्थान बदलने पर भी इन निशाचरों का भय वना रहता है तो यहाँ से चले जाने में कोई तथ्य नहीं।"

तो क्या किया जाये? आप महाराज भरत को लिख दें कि यहाँ एक सेना भेज दें। तव ही हमारी रक्षा हो सकती है।"

"देखिये भगवन्!" राम ने कुलपति को अपना निश्चय वता दिया, "मैं भरत को यह नहीं लिखूँगा क्योंकि यह महिष्मति राज्य का क्षेत्र है। जैसे एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकती वैसे ही यदि कोई भी दूसरे देश का राजा यहाँ सेना भेजेगा तो एक प्रदेश में दो सेनाएं एक साथ नहीं रह सकतीं अत: दो आर्य सेनाओं में अकारण युद्ध हो जायेगा। इस कारण भरत यहाँ सैनिक कार्यवाही नहीं करेगा।

"मैं आप लोगों की भाँति यहाँ मोक्ष-मार्ग की खोज में नहीं आया हूँ। इस कारण मैं यहाँ से पलायन नहीं करूँगा। मेरी प्रवृत्ति ऐसा करने को कहती भी नहीं अत: मैं यहाँ ही रहूँगा। मैं समझता हूँ कि हम दो भाई ही सौ-दो सौ राक्षसों का सामना कर सकते हैं।"

"यह मैं जानता हूँ। आप अपने बल और तेज से सौ-दो सौ क्या, एक-दो सहस्त्र को भी भगा सकते हैं। परन्तु आपके रहते राक्षस इधर आएंगे ही क्यों? तपस्वी लोग तो वन में सहस्त्रों कोस तक फैले हुए हैं।" इतना कह कुलपति मौन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया।

वन में रहने का ढंग कुछ ऐसा था कि एक कुटिया दूसरी कुटिया से चौथाई मील के अन्तर पर थी। समीप-समीप रहने की उनमें रुचि नहीं थी। परिणाम यह होता था कि रात के समय एक परिवार की कठिनाई का दूसरे को पता भी नहीं चलता था। दिन चढ़ने पर यदि कोई उस कुटिया की ओर जाता तो उसे पता चलता कि वह उजड़ी हुई है और उसके वासी मार-पीट कर समाप्त किये जा चुके हैं।

इस पर भी राम की सोच यह थी कि भाग कर जहाँ जायेंगे क्या ये निशाचर वहाँ नहीं पहुँच जायेंगे। न भी आए तो उनके लौटने के वाद इन मुनियों का क्या होगा?

इस विषय पर लक्ष्मण से भी चर्चा हुई। लक्ष्मण ने कहा, "भैया! यह सुन कर मेरे भुजदण्ड इन निशाचरों से जूझने के लिए व्याकुल हो रहे हैं। मेरे बाण इनका रक्त पीने की लालसा कर रहे हैं।"

इस पर राम ने कहा, "लक्ष्मण! तुम मेरे मन की भावना को ठीक समझे हो। बुराई से भागने पर बुराई पीछा करती है और भागते हुए को पराजित करने में सफल हो जाती है। इस कारण मैं यहाँ से भाग नहीं रहा। परन्तु मैं एक और पाठ भी पढ़ा हूँ। वह यह कि आक्रमण करने वाले की प्रतीक्षा करनी भी दुर्बलता है अत: उसके द्वारा आक्रमण करने की प्रतीक्षा करने के स्थान यह अधिक उचित होगा कि उस पर आक्रमण कर दिया जाये और उसे समाप्त कर दिया जाये। सुरक्षा में लड़ने के स्थान पर आक्रमण करना अधिक ठीक है।"

"परन्तु भैया! वे हैं कहाँ?"

"देखो लक्ष्मण! पंचवटी से कुछ अन्तर पर रावण के रिश्ते में एक भाई खर ने एक जन-स्थान बसाया है। उसमें राक्षस सेना रहती है। हमें वहाँ ही चलना चाहिए।"

"परन्तु भैया! क्या हम इन अस्त्र-शस्त्रों से जो हमारे पास हैं, एक सैनिक जनपद को विजय कर सकेंगे और फिर बिना सेना की सहायता के?"

"यह बात विचारणीय है। कुलपति ने कुछ दिन पूर्व ही बताया था कि दण्डकारण्य में शरभंग नाम के एक ऋषि रहते हैं। उन्होंने उस युद्ध में भाग लिया था, जिसमें विष्णु ने लंका राक्षसों से खाली करायी थी। उनके कार्य से प्रसन्न हो भगवान् शिव ने उन्हें सुरक्षा के लिए कुछ दिव्य अस्त्र दिये थे जो विष्णु के सुदर्श

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
न चक्र के तुल्य घातक तो नहीं, परन्तु उससे कम भी नहीं। उन में से कुछ शस्त्र तो अत्यन्त ही घातक माने जाते हैं जो देखते ही देखते नगरों को समाप्त कर सकते हैं। वह ऋषि अव वृद्ध हो चुके हैं और उन दिव्यास्त्रों के लिए सुपात्र की खोज में हैं।"

लक्ष्मण के भुजदण्ड फड़कने लगे और वह उत्तेजना में उठ खड़ा हुआ और वोला, "तो भैया, चलो। यहाँ व्यर्थ में समय नष्ट करने से क्या लाभ है?"

राम ने सीता की ओर देखा तो उसने भी सहमति में सिर हिला दिया। तव दोनों भाईयों ने अपने अस्त्र शस्त्र उठाए और तीनों दण्डकारण्य की ओर चल पड़े। वन में पगडण्डियों पर आगे-आगे राम, पीछे लक्ष्मण और वीच में सीता दक्षिण की ओर वढ़ने लगे।

: 23 :

रावण ने जव अपने को आर्यवर्त के आर्य-राज्यों पर विजय प्राप्त करने में असमर्थ पाया तो लूटमार आरम्भ कर प्रजा को त्रसित कर भगा देने का यत्न करना आरम्भ कर दिया था। इसे हम आजकल की भाषा में आतंकवाद भी कह सकते हैं। उसने अपने भाई खर को इसी निमित दण्डकारण्य में भेजा हुआ था। खर ने पंचवटी के समीप एक राक्षस जन-स्थान स्थापित किया और रावण की नीति अनुसार राक्षसों को वहाँ वसाना आरम्भ कर दिया। धीरे धीरे उन राक्षस सैनिकों की सँख्या वढ़ कर चौदह सहस्त्र हो गई। उनमें वहुत से अपनी पत्नियों और वच्चों के साथ उस जन-स्थान में रहते थे। कई राक्षस स्त्रियाँ तो क्रूरता में राक्षस पुरुषों से वढ़कर थीं।

इस जन-स्थान में राक्षसों की मंडलियाँ तैयार की जाती थीं और दण्डकारण्य को आतंक द्वारा खाली कराने का यत्न किया जा रहा था। वन में जव मुनिगण रात के समय अपने-अपने आश्रम में आराम कर रहे होते थे, तो ये लोग दल वनाकर दूर-दूर किसी एक आश्रम पर वड़ी की संख्या में जा धमकते थे। पुरुषों और वच्चों को मार कर खा जाते थे और स्त्रियों को उठाकर ले जाते थे। दिन निकलने से पूर्व वे वनों में जा छुपते थे। पड़ोस के आश्रम वाले कभी उस आश्रम की ओर से गुजरते तो आश्रम को जला हुआ तथा उजड़ा हुआ देखकर समझ जाते कि राक्षस दल वहाँ अपना कार्य कर गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खर को राम, लक्ष्मण व सीता के वहाँ आने की सूचना मिल गई। उसे यह भी पता चला कि दोनों भाई धुरन्धर योद्धा हैं। वह चाहता था कि राम और लक्ष्मण को भयभीत कर भगा दिया जाये। उसे डर था कि दोनों भाई अपनी सेना निर्माण कर वहाँ उसके विरोध में अपना राज्य स्थापित न कर लें। इस विषय में उसने रावण से भी वातचीत की, परन्तु रावण का विचार दूसरा था। उसने खर को कहा, "देखो खर! वहाँ के वनवासियों को त्रसित कर भगाते रहो। इससे राम सेना का निर्माण नहीं कर सकेगा और यदि तुमने सीधे राम-लक्ष्मण पर आक्रमण किया तो फिर कौशल-राज्य और लंका राज्य में ठन जायेगी। तब वही स्थिति हो जायेगी जो हमारी महिष्मति के अर्जुन के कारण हुई थी। मैं इन मानव-राज्यों से अभी युद्ध करना नहीं चाहता।"

इस सम्मति के अनुसार मुनियों की मारकाट होती रही। सीता के साथ होने के कारण वे धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। मार्ग में कई आश्रम मिले। एक अति सुन्दर और विशाल आश्रम दिखायी दिया तो राम इत्यादि उसमें चले गये। आश्रम अति स्वच्छ और फल-फूलादि के वृक्षों से अति शोभायमान हो रहा था। पूर्ण वातावरण मनोरम था। उस आश्रम में ब्रह्म के ज्ञाता मुनि और ब्रह्मचर्य के ओज से परिपूर्ण विद्यार्थीगण इधर-उधर घूम रहे थे।

राम के आश्रम में प्रवेश करते ही आश्रमवासियों का ध्यान उनकी ओर आकर्पित हो गुया। वे ओजस्वी राम, कान्तिमान् लक्ष्मण तथा उनमें अति सुन्दर सीता को आश्रम में प्रवेश करते देख उनकी ओर आये। उनमें से एक उनको हाथ जोड़ प्रणाम कर पूछने लगा, "भगवन्! आप इस वन में इस प्रकार निर्भय होकर घूमने वाले कौन हैं?"

परिचय लक्ष्मण ने दिया। उसने वताया, "यह मेरे वड़े भाई राम हैं और यह मेरी भावज सीता जी हैं। मैं इनका अनुचर तथा भाई लक्ष्मण हूँ। हम कौशल नरेश स्वर्गीय महाराज दशरथ के सुपुत्र हैं और पिता की आज्ञा से इस समय वनवास कर रहे हैं।"

राम के वनवास की कथा तो पूर्ण देश में विख्यात हो चुकी थी। अतः वनवासी उसी कथा के मुख्य पात्र श्रीराम को अपने आश्रम में आये देख वहुत प्रसन्न हुए और उनको आदर के साथ कुलपति के पास ले गये। कुलपति को जव राम इत्यादि का परिचय दिया गया तो वह भी वहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उठकर अभ्यागतों का स्वागत किया और आसन दे जलपान करने के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कहा।

राम जब बैठ गये तो कुलपति ने पूछा, "राम! इधर कैसे आ गये हो? यह वन तो अकेले और कोमलांगी सीता के साथ घूमने के लिए उपयुक्त स्थान नहीं।"

"भगवन!" राम ने कहा, हमें बताया गया था कि यह दण्डकारण्य राक्षसों से पीड़ित है। परन्तु इस आश्रम को देख हमें अपनी सूचना पर सन्देह हो रहा है।"

"नहीं, राम! वन तो वैसा ही भयानक है, जैसा आपने सुन रखा है, परन्तु यह आश्रम एक सुरक्षित स्थान है। हमने इसकी रक्षा का प्रवन्ध कर रखा है और रात के समय इसके संरक्षक कई-कई सौ गज के अन्तर पर नियुक्त होते हैं। रात के समय राक्षसों और संरक्षकों में प्राय: मुठभेड होती रहती है।"

राम ने पूछ लिया, "तो आपने इस आश्रम की रक्षा के लिए सेना रखी हुई है?"

"नहीं, राम! हमारे यहाँ कुछ नरेशों के राजकुमार शिक्षा ग्रहण करते हैं और आश्रम की रक्षा का भार उन पर रहता है। उन्होंने आश्रमवासियों को इन निशाचरों से सुरक्षित रखने का प्रवन्ध कर रखा है। उन्होंने इन आश्रमवासियों को प्रशिक्षण देकर एक संरक्षक दल का निर्माण किया है और वह दल निशाचर राक्षसों से आश्रम की सुरक्षा करता है।"

"हमें अभी तक मार्ग में कोई राक्षस नहीं मिला।"

"इस पर भी मैं आपको सम्मति दूँगा कि आप इस आश्रम में ही रहें। आपके यहाँ रहने से हम भी अधिक सुरक्षित अनुभव करेंगे।"

"परन्तु हम तो पंचवटी को जा रहे हैं।"

"किस प्रयोजन से?"

"सुना है कि वहाँ राक्षसों का कोई जनवास है जहाँ पर आतंक के पर्याय इन निशाचरों को तैयार किया जाता है जो निशा के अन्धकार में आतंक फैलाते हैं। हम वहाँ जाकर यह सब देखने की इच्छा रखते हैं।"

इस सूचना से कुलपति विस्मित रह गए।

राम ने अपना विचार वताया, "मेरा विचार है कि सुरक्षा-व्यवस्था आवश्यक होते हुए भी यह निर्भय होने का उपाय नहीं है। निर्भय होने के लिये आतंक के स्त्रोत-स्थान को ही विनष्ट करना चाहिये। अत: हम वहीं जा रहे हैं।"

"परन्तु इस प्रकार केवल दो पुरुष, एक स्त्री के साथ होते हुए चौदह सहस्त्र योद्धा राक्षसों से कैसे निपट सकेंगे? यह तो सिंह की माँद में शस्त्र रहित घुसने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुल्य है।"

"हम वहाँ अवश्य जायेंगे। उनका विरोध करने करने के लिए हमारे पास कुछ दिव्यास्त्र हैं और हमारी सूचना है कि महर्षि शरभंग के पास कुछ नवीनत्तम व उन्नत दिव्यास्त्र हैं जो हम उनसे प्राप्त करना चाहते है।"

"मेरा आग्रह है", कुलपति ने कहा, "आप चौदह वर्ष तक इस आश्रम में ही रहिये और वह समय यहीं व्यतीत करिये। हम आपकी प्रत्येक सुख-सुविधा के लिए यत्न करते रहेंगे।"

"परन्तु भगवन्!" राम ने कहा, "यह तो एक छोटा-सा नगर है जिसमें चारों वर्ण के लोग अपने परिवार सहित रहते हैं और मैं पिता की आज्ञा से चौदह वर्ष तक वन में रहने के लिए भेजा गया हूँ। इस कारण मैं यहाँ नहीं रह सकता। यह पिताजी की आज्ञा का उल्लंघन हो जायेगा।"

कुलपति राम की युक्ति को समझते थे, परन्तु इस प्रकार वन में भ्रमण करने वालों की सुरक्षा के लिये भी वह चिन्तित थे। इस कारण न तो वह राम की युक्ति का विरोध कर सके और न ही उनके कार्यक्रम को स्वीकार कर सके।

तीनों एक रात आश्रम में रहे और अगले दिन शरभंग ऋषि के आश्रम का मार्ग पूछ चल पड़े।

: 24 :

जो लोग भोग की प्रवृत्ति रखते हैं, भोग के योग्य वस्तु सम्मुख आये तो फिर उसका भोग करने से अपने को रोक नहीं सकते। यही बात राक्षसों की होने लगी। मनुष्य-माँस खाने वालों के सम्मुख जब कोई कोमलाँग मनुष्य आता था तो जैसे माँसाहारी के मुख से हिरण के बच्चे को देख लार टपकने लगती है वही अवस्था तीनों मानवों को देख उन राक्षसों की होने लगती थी।

दण्डकारण्य में मृगों और अन्य वन-पशुओं से भरे तथा सब प्रकार से सुरक्षित रहने योग्य स्थान को देख एक सरोवर के किनारे दोनों भाई और सीता बैठे वन की शोभा देख रहे थे कि पेड़ो के झुरमुट में से एक विशालकाय भयंकर रूप वाला राक्षस इन पर लपका और सीता को उठाकर एक ओर को भागा।

लक्ष्मण ने उसे ललकारा और भाग कर उसका मार्ग रोक खड़ा हो गया। राम भी लक्ष्मण के साथ जा खड़े हुए और राक्षस का मार्ग रोक उसे सीता को छोड़ देने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये कहने लगे।

राक्षस ने समझा कि एक नहीं, यदि तीनों को ही उठा ले जाये तो कई दिन का भोजन वन जायेगा। इस कारण उसने सीता को कन्धे से उतार भूमि पर खड़ा कर दिया और स्वयं उसके सामने खड़ा हो वोला, "तुम कौन हो जो इस वन में घूम रहे हो? तुम दोनों के साथ एक स्त्री है। तुम व्याभिचारी हो। इस कारण तुम दण्डनीय हो।"

राम ने उसे शान्त भाव से कहा, "यह तुम्हारा भ्रम है। हम इस वन में किसी प्रकार का अनाचार नहीं कर रहे। जो कुछ हमारा अधिकार है, उसका ही भोग कर रहे हैं। यह धर्म से मेरी भार्या है। इसे छोड़ दो और यह वताओ कि तुम्हें दण्डाधिकारी किसने वनाया है।"

परन्तु राक्षस के मन में दूसरी ही वात थी। उसने स्पष्ट कह दिया, "नहीं। यह स्त्री मेरी पत्नी होगी। तुम इसके योग्य नहीं।" यह कह वह सीता की वाँह पकड़ घने वन की ओर घसीटने लगा तो राम ने अपना धनुष कन्धे से उतारकर कई वाण उस पर छोड़े; परन्तु राक्षस का शरीर वज्र के समान कठोर था। वाण उसके शरीर को छूकर एक ओर ऐसे गिर जाते थे कि मानो किसी लोहे की दीवार से टकराकर गिर जायें।

इस पर भी जव राम और लक्ष्मण दोनों ने वाणों की वर्षा जारी रखी तो राक्षस उन पर लपका और उनको वहीं मार कर खा जाने का विचार वना वैठा।

राक्षस ने लक्ष्मण को जव पकड़ा तो राम ने अपनी खड्ग का प्रहार उसकी वाँह पर कर दिया। इस प्रहार से तो उसकी पकड़ लक्ष्मण पर से छूट गयी। लक्ष्मण ने मुक्त होते ही राक्षस की दूसरी वाँह पर अपने खड्ग से प्रहार किया। जव दोनों भाई इस प्रकार प्रहार करने लगे तो उसका प्रभाव होने लगा।

इस प्रकार चार पाँच प्रहारों से ही राक्षस की दोनों वाँहें कट गयीं तव राम ने अन्तिम प्रहार उसकी गरदन पर किया और वह धरा पर गिर कर मृत्यु को प्राप्त हो गया। मृत राक्षस की वृहत् और वलिष्ठ काया को देख दोनों भाई और सीता विस्मय कर रहे थे।

वाद में किसी राहगीर मुनि से पता चला कि उस राक्षस का नाम विरधि था और वह अकेला ही उस वन में घूमता था। उस वन में न तो कोई मुनि शेष रहा था और न ही कोई मुनि-आश्रम। इस पर भी यह वन अति रमणीक और फल, कन्द, मूल इत्यादि से भरपूर था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राक्षस के शव के भूमि पर गिरते ही सियार का एक दल उसे नोच खाने को लपक पड़ा। राम ने कहा, "यह इन सियारों के लिए कई दिन का भोजन है।"

"लक्ष्मण ने कहा, "यदि इतने बड़े शरीर और बल से यह कोई उपकारी कार्य करता तो संसार में ख्याति प्राप्त कर सकता था।"

राम हँसते हुए बोले, "अपने क्रूर स्वभाव से यह विख्यात तो अवश्य ही हुआ होगा परन्तु इतने बड़े शरीर में मन और बुद्धि अति दुर्बल प्रतीत हुए हैं।"

जब राम वहाँ से चले तो सीता ने कहा, "यह वन अति रमणीक प्रतीत होता है। क्यों न कुछ दिन यहीं विश्राम किया जाये?"

राम का उत्तर था, "हमें शरभंग ऋषि के आश्रम पर चलना चाहिये। वहाँ पहुँचकर ही अपने स्थायी निवास-स्थान का प्रबन्ध करेंगे।" इस पर भी सीता के आग्रह पर उस वन में मुनियों से रिक्त उनके अधजले अथवा टूटे-फूटे आश्रमों पर विश्राम करते हुए धीरे-धीरे तीनों आगे बढ़ने रहे।

इस प्रकार भ्रमण करते हुए राम को एक बात अनुभव हुई। वह यह कि राक्षसों के अत्याचार के समाचार तो मिलते हैं, परन्तु वे राम के सामने नहीं आते थे। इसका कारण उन्हें ज्ञात नहीं हो सका।

कई दिन की यात्रा कर तीनों शरभंग ऋषि के आश्रम पर पहुँचे।

राम ने महर्षि शरभंग जी के विषय में पूछा तो वहाँ खड़े हुओं में से एक ने बताया, "महर्षि जी बहुत वृद्ध हो गए हैं और वह आज सन्ध्या समय प्राण छोड़ने वाले हैं।"

राम ने कहा, "पर हम तो उनके दर्शन करने आये हैं। सूचना भीतर भेज दीजिए।

"आपका शुभ परिचय क्या है।"

राम ने कहा, "अयोध्या निवासी महाराज दशरथ का पुत्र राम अपनी पत्नी सीता तथा भाई लक्ष्मण सहित।"

राम का परिचय सुन वह ब्रह्मचारी झुककर राम के चरण स्पर्श करने लगा। राम ने उस ब्रह्मचारी को उठा गले से लगा कहा, "यह क्या कर रहे हैं?"

"राम! आपकी ख्याति तो आपके आगे-आगे चल रही है। इस समय आर्य वर्त में कौन है जो आपका नाम नहीं जानता। आपके त्याग और तपस्या की तुलना में और किसकी तपस्या हो सकती है और फिर माता सीता के भी संसार गुणगान करता है। महर्षि तो उत्सुकता से आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बहुत अभिलाषा थी कि देहावसान से पूर्व आपके दर्शन कर सकें।"

वह ब्रह्मचारी भागा हुआ आश्रम के भीतर चला गया। जाते-जाते जो भी मार्ग में मिलता, उससे वह कहता जाता, "दशरथ पुत्र श्रीराम आये हैं।"

अत: ज्योंही राम ने आश्रम में प्रवेश किया, बहुत से आश्रम-वासी, नर-नारी राम की आगवानी करने वहाँ पहुँच गये।

स्वास्थ्य-समाचार पूछा ही जा रहा था कि सूचना ले जाने वाला आया और राम इत्यादि को लेकर महर्षि जी की कुटिया में चला गया।

शरभंग ऋषि अपने जीवन की अन्तिम पूजा-पाठ करने आसन पर बैठे थे। जब तीनों ने आगे बढ़ उनके चरण-स्पर्श किए तो उन्होंने तीनों को आशीर्वाद दिया और सीता को कहा, "बेटी! जीवन-पर्यन्त सौभाग्यवती रहो।"

उनको बिठाया गया और अन्य सबको वहाँ से चले जाने को कह दिया गया। जब कुटिया में राम, सीता, लक्ष्मण और शरभंग ऋषि ही रह गये तो मुनि ने कहा, "मुझे सूचना थी कि आप यहाँ पहुँच रहे हैं। आपके पहुँचने में विलम्ब हो रहा था। मेरे पास आपकी अमानत के रूप में कई दिव्यास्त्र थे। मैं अब बहुत वृद्ध हो चुका हूँ। अपने नित्यकर्मों में अशक्त हूँ। आज सायंकाल सन्ध्या के समय मेरे देहावसान का समय है, इस कारण मैंने कल ही वे सब अस्त्र-शस्त्र सुरक्षा के दृष्टिकोण से अगस्त्य मुनि के आश्रम में भेज दिये हैं और उनको यह कहला भेजा है कि उचित प्रशिक्षण के साथ वे सब आपको दे दें।

"ब्रह्मऋषि अगस्त्य ही इस स्थान पर एक ऐसे योग्य व्यक्ति हैं जो तुम्हें उन अस्त्रों का प्रयोग बता सकते हैं।

"देखो राम! तुम वन में आए हो। अत: तुम्हारी राक्षसों से मुठभेड़ अवश्य होगी। यह भी सम्भव है कि पूर्ण सेना तुम अकेले पर चढ़ आये। अत: तुम्हारे पास वे दिव्यास्त्र और उनकी प्रयोग विधि होनी चाहिए।

"दिव्य अस्त्रों के प्रयोग में एक विशेष बात ध्यान देने योग्य है कि इनका प्रयोग उस समय ही किया जाना चाहिए, जब शत्रु बहुत अधिक सँख्या में हो अथवा जब वह भी दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर रहा हो।"

इस पर राम ने कहा, "विराध नाम के एक राक्षस से हमारा वन में झगड़ा हो चुका है और हमने सामान्य खड्गों से ही उसको मार डाला है।"

"ठीक है। जब इक्का-दुक्का राक्षस आयें तो इन अस्त्रों का प्रयोग न केवल इनको व्यर्थ गँवाना होगा, वरन् इनके निर्माताओं की इच्छा का उल्लंघन करना भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
होगा। इस कारण ये अस्त्र उस समय के लिए ही हैं, जब शत्रु बहुत ही अधिक सँख्या मे हों। जहाँ शारीरिक वल कम हो वहाँ मानव निर्मित साधारण साधनों का प्रयोग होना चाहिये।"

ऋषि ने कहा, "मैं अव भगवत-भजन में लीन होना चाहता हूँ। इस कारण समय कुछ अधिक नहीं है।"

राम ने ऋषि के देह छोड़ने का समय समीप देख उनसे आशीर्वाद देने के लिए कहा और साथ ही उपदेश में कुछ कहने की याचना कर दी।

"अन्त में इतना ही कहना चाहूँगा कि यह ध्यान में रखो कि मनुष्य-सृष्टि में दो ही प्रकार के प्राणी हैं। एक हैं धर्मानुयायी और दूसरे हैं अधर्माचरण में लीन। तीसरी प्रकार के प्राणी नहीं हैं। यह देखने में आता है कि प्राणी के कर्मो में धर्म के कर्म भी होते हैं और अधर्म के भी। कर्म करने का तीसरा मार्ग नहीं है। मनुष्य के कर्मो का मूल्याँकन कर्मो में उसके अधिक कर्म-धर्मयुक्त अथवा अधर्मयुक्त होने से किया जा सकता है। इस कारण मनुष्य मारा जाने के योग्य है अथवा रक्षा करने के योग्य है, यह उसके द्वारा किए गए कर्मो के धर्म अथवा अधर्मयुक्त होने से ही निश्चय होता है।"

इस समय ऋषि ने आकाश की ओर देखा और सांध्यकाल को समीप देख वह आश्रमवासियों द्वारा वनाई एवं विधिवत् सजायी चिता पर जा वैठे और ध्यानावस्थित हो गये। सव आश्रमवासी, जिनकी संख्या कई सहस्त्र थी, उस चिता के चारों ओर एकत्रित हो गये।

ऋषि अति वृद्धावस्था को प्राप्त होने पर भी अति ओजपूर्ण व्यक्तित्व रखते थे और उनके मुख पर ओज प्रति क्षण वढ़ रहा प्रतीत होता था। ठीक सूर्यास्त के समय ऋषि का अपना शरीर ही इतना ओजपूर्ण हो गया कि उसमें से अग्नि की लपटें निकलने लगीं। उस अग्नि से ही चिता की लकड़ियाँ प्रज्वलित हो उठीं और सवके देखते-ही-देखते शरीर भस्म हो गया।

राम ने एक आश्रम वासी से पूछा, "भगवन्! यह अग्नि कहाँ से आ गई?"

उस आश्रमवासी का कहना था, "यह तो प्रत्येक प्राणी में प्राण के रूप में विद्यमान होती है। इन प्राणों से ही मनुष्य का शरीर कार्य करता है। मरने के समय ये प्राण प्राणी के हृदय के अग्रभाग में एकत्रित हो जाते हैं और वहाँ से वह जीवात्मा और सूक्ष्म शरीर को लेकर अगली योनि में चल देते हैं। परन्तु महार्पि का जीवात्मा शरीर छोड़ते ही मोक्ष प्राप्त कर गया है। मुक्त-लोक में सूक्ष्म शरीर साथ नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जाता। अतः जीवात्मा को प्राणों की आवश्यकता नहीं होती। वे प्राण ही अग्नि का रूप हो गये थे।"

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो आपको ऐसा होता दिखायी दिया है?"

"हाँ! वह सूक्ष्म शरीर भी चिता में ही स्थूल शरीर के साथ जल गया है और वे प्राण, जो शरीर में से विनिर्मुक्त हुए हैं, चिता को प्रज्वलित करने में समर्थ थे।"

: 25 :

राम इत्यादि शरभंग ऋषि के आश्रम में तीन दिन ही रहे। इस आश्रम में रहते हुए उनको निशाचरों द्वारा रात के समय छापा मारने के समाचार मिलने लगे थे। आश्रम के व्यवस्थापक ने वताया, "हमारा आश्रम तो एक प्रकार का दुर्ग है। इस दुर्ग की प्राचीर भौतिक नहीं है, परन्तु इसकी रक्षा के लिये हमने एक ऐसी आध्यात्मिक प्राचीर खड़ी कर रखी है जो रात के समय अनुल्लंघनीय हो जाती है। अव राक्षस यह वात जान गये हैं। वहुत पहले दो-तीन वार उनके कुछ-एक झुण्डों ने इस आश्रम पर आक्रमण किया तो वे उस प्राचीर की लपेट में आ गये और सव-के-सव वहाँ प्राचीर पर पहुँचते ही मृत्यु को प्राप्त हुए। प्रातः उनके शव हमने उठवा दूर जंगल में वन पशुओं के आहार के लिये फिँकवा दिये।

"अव वे हमारे आश्रम की ओर नहीं आते। अतः जो छोटे छोटे आश्रम थे उनके रहने वाले इसी आश्रम में आ चुके हैं अथवा इन निशाचरों द्वारा समाप्त किए जा चुके हैं। एकाकी व्यक्ति का आना जाना तो असम्भव हो गया है।"

"तो अन्य वनवासी भी आपसे इस प्रकार की प्राचीर निर्माण का ढंग क्यों नहीं सीख जाते?"

"यह प्रवन्ध वड़े-वड़े आश्रमों में ही सम्भव है। ऐसी प्राचीर का निर्माण उन्नत अध्यात्म द्वारा सम्भव है जो प्रत्एक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। साथ ही एक व्यक्ति वन में घूमता हुआ वह प्राचीर अपने साथ-साथ ले जा नहीं सकता। यह तो एक स्थान को सुरक्षित रखने के लिये ही स्थापित की जा सकती है। अतः मुनि लोग वन में घूमते हुए पकड़े जाते हैं और मार डाले जाते हैं अथवा रात के समय आरक्षित आश्रमों में राक्षस पहुँच जाते हैं और आश्रमों को आग लगा फूँक देते हैं और उनमें रहने वालों का माँस भूनकर खा जाते हैं।

"जव आप महर्पि अगस्त्य जी से मिलेंगे तो वह आपको आपकी रक्षा के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इसकी विधि दे सकते हैं।"

राम, सीता और लक्ष्मण अगस्त्य मुनि के आश्रम को चल पड़े। उनका पथ-प्रदर्शन करने के लिये शरभंग आश्रम के कुछ मुनि उनके साथ हो लिये। इस मार्ग पर ज्यों-ज्यों राम इत्यादि आगे बढ़ते गये, उन्हें निशाचरों द्वारा सम्पन्न विनाश-लीला के प्रमाण अधिक-से-अधिक मिलते गये। स्थान-स्थान पर मनुष्य अस्थियों के ढेर और आश्रमों के जलकर भस्म होने के चिह्न दिखायी दे रहे थे। मार्ग में पथ-प्रदर्शन के लिये चल रहे मुनियों ने उन्हें बताया कि वहाँ कौन कौन ऋषि और किस काल में रहा करते थे। उनमें कुछ आश्रम तो सैकड़ों वर्ष पुराने थे जिनके अब अवशेष मात्र ही रह गये थे।

लक्ष्मण ने विस्मय में पूछा, "ये लोग इस आरक्षित अवस्था में किसलिये रहते थे? उनको तो किसी राजा के राज्य में और नगरों में सुरक्षित स्थानों पर जाकर रहना चाहिये था।"

साथ चल रहे एक मुनि ने बताया, "महाराज! यह वन-स्थली सुखकारक और शान्तिमय स्थान है। यहाँ फल, कन्दमूल अनायास ही मिल जाते हैं और दिन-भर ज्ञानोपार्जन का अवसर मिल जाता है। मानव और देव, ऋषि-आश्रमों में आते हैं और वस्त्रादि तथा अन्न-अनाज दे जाते हैं। ऋषि-महर्षि उनको उपदेश देते हैं। इस प्रकार यहाँ का जीवन नगरों के जीवन से अधिक सुगम, सरस और हितकारी होता है।

"परन्तु इधर कुछ वर्षों से राक्षसों ने उत्पात मचाना आरम्भ कर दिया है। समुद्र का पूर्ण पश्चिमी तट और उसके समीपवर्ती द्वीप राक्षसों ने अपने अधिकार में कर लिये हैं और अब पंचवटी तक बढ़ आये हैं।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि यदि उत्तरी क्षेत्र के नरेशों ने इधर ध्यान न दिया तो यह स्थान भी हम लोगों को खाली करना पड़ेगा और फिर रावण अपना एक नगर दण्डकारण्य में स्थापित कर यहाँ भी राक्षसों की एक प्रबल सेना बैठा देगा। तब इनको विन्धाचल के उत्तर में आतंक फैलाना सुगम हो जायेगा।

"पूर्वी तट अभी सुरक्षित है। वहाँ के नरेश बाली से रावण की सन्धि है और वह उस राज्य में अपने अनुचर नहीं भेज रहा। परन्तु आर्यवर्त का पूर्ण पश्चिमी समुद्र तट उसके अधीन हो चुका है।"

"परन्तु आप लोग यहाँ अपनी सेना निर्माण क्यों नहीं कर लेते?"

"हम लोग यहाँ ज्ञानार्जन के लिए आये हुए हैं। यदि हमें भी सेना, सुभट्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इत्यादि रखने पड़े तो उनके लिए लगातार धन की आवश्यकता पड़ेगी। धन तो कर इत्यादि से ही उपलब्ध होता है जो नागरिकों के व्यापार इत्यादि पर लगाया जाता है। तब यहाँ भी नागरिक जीवन की कठिनाइयाँ उपस्थित हो जायेंगी। ऐसी स्थिति में हमें यहाँ रहकर क्या करना है?

"एक समय महर्षि शरभंग अपने आश्रम को हिमाचल में ले जाने का विचार करने लगे थे, परन्तु महादेव जी ने कुछ शस्त्रास्त्र और अन्य रक्षा के साधन मुनिजी को दिये तो वह इस स्थान को छोड़ने का विचार त्याग कर यहाँ ही रहने लगे थे।"

कई दिन की यात्रा के उपरान्त वे सब अगस्त्य ऋषि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ इनका भव्य स्वागत हुआ और आश्रम में इनको ठहरा लिया गया।

अगस्त्य ऋषि के आश्रम में तीनों एक सप्ताह-भर रहे और इस अवधि में उन सब दिव्य अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग का ढंग राम और लक्ष्मण को सिखा दिया गया जो शरभंग ऋषि ने अपने देहावसान के पूर्व अगस्त्य जी को दिये थे।

एक दिन राम ने अपने मन की इच्छा भी बतायी। उसने कहा, "मैं इस अरण्य को राक्षसों से खाली कराने का विचार रखता हूँ।"

ऋषि ने कहा, "परन्तु मेरी सूचना है कि इस अरण्य में रहने वाले राक्षसों के नेता खर को यह आज्ञा है कि तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न दिया जाए। मेरे दूतों ने यह भी समाचार दिया है कि रावण विन्ध्य के उत्तर में स्थित राज्यों से झगड़ा मोल लेना नहीं चाहता। वह उनसे अपनी सन्धि का पालन करेगा। इस अवस्था में क्या तुम उससे स्वयं झगड़ा करोगे?"

"परन्तु जब वह निरपराध व्यक्तियों को कष्ट दे रहा है तो क्या यह मेरा कर्त्तव्य नहीं कि मैं उनकी रक्षा करूँ?"

"परन्तु राम! मैं पूछता हूँ कि यहाँ के रहने वालों की रक्षा का भार तुमको किसने दिया है? यह वन किसी के राज्य में नहीं और तुम किसी राज्य के कर्मचारी नहीं हो। तुम यहाँ के रहने वालों की रक्षा में दूसरों की हत्या किस अधिकार से कर सकोगे?"

राम समझ गए कि ये ऋषि लोग अति सरल-चित हैं और अपने कार्यों को धर्मानुकूल सिद्ध करने के लिए धर्म का व्यावहारिक अर्थ भी भूल रहे हैं। राम ने अपने अधिकार की बात पहले की।

उसने कहा, "भगवन्! मैं एक चक्रवर्ती राजा का पुत्र और प्रतिनिधि हूँ। चक्रवर्ती राजा का यह कर्तव्य होता है कि भू-मण्डल के अन्य राजाओं से धर्म का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पालन करवाए और जो स्थान किसी राज्य के अन्तर्गत न हो वहाँ वह स्वयं धर्म-व्यवस्था स्थापित रखे। यह स्थान किसी भी राज्याधीन न होने से चक्रवर्ती राजा के अधीन है और यह मैं चक्रवर्ती राजा का कर्तव्य मानता हूँ कि यहाँ के निस्सहाय व्यक्तियों के परित्राण का उपाय करे।"

"इस पर भी", महर्षि ने कह दिया, "राम! मेरी सम्मति है कि युद्ध में हत्याएँ वहुत अधिक सँख्या में होती हैं। अत: जहाँ तक सम्भव हो युद्ध से वचना चाहिए। इस कारण युद्ध केवल स्वरक्षा में ही लड़े जाने चाहियें और इन दिव्यास्त्रों का प्रयोग तव तक नहीं करना चाहिए जव तक राक्षसों की विशाल सेना का आक्रमण न हो और उनका वध तव ही हो जव वे कोई नर-संहार करें।

श्रीराम ने वचन दे दिया कि वह ऐसा ही करेंगे।

: 26 :

एक सप्ताह तक राम इत्यादि महर्षि के आश्रम में रहे। तव उनके मन में विचार आया कि पंचवटी में गोदावरी के किनारे चलकर रहना चाहिये।

इस विचार के आते ही राम महर्षिजी के पास पहुँच कर अपना पूर्व संकल्प वताकर जाने की स्वीकृति माँगने लगे।

अगस्त्य जी ने कहा, "हम सुरक्षार्थ तुम्हें एक अन्य यन्त्र और उसका ज्ञान एवं प्रयोग विधि देते हैं, जिससे तुम्हारे आश्रम में अनिच्छित व्यक्ति घुस नहीं सकेंगे। इसे लगाकर जव तुम इसमें ऊर्जा का प्रवाह छोड़ोगे तो यह आश्रम में आने का यत्न करने वाले प्रत्एक अनिच्छित व्यक्ति का वध कर देगा।"

राम ने इस यन्त्र की महिमा सुन रखी थी और इसको प्राप्त करने पर उन्होंने अगस्त्य जी के चरण-स्पर्श किये और धन्यवाद कर दिया। इस प्रकार अति उन्नत और घातक अस्त्रों से सुसज्जित वह सीता और लक्ष्मण सहित पंचवटी को चल पड़े।

पंचवटी में रहते हुए समय व्यतीत होने लगा।

पंचवटी में उनका परिचय जटायु नाम के एक वनवासी से हुआ। जटायु एक दिन उनके आश्रम में आया और अपना परिचय देने लगा। उसने वताया कि वह महाराज दशरथ का मित्र है। युवाकाल में वह महाराजा के साथ समर पर गया था और वहाँ अपने शौर्य और बुद्धिवल से महाराज दशरथ का मित्र बन सका था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जटायु ने अपने कुल का वर्णन करते हुए कहा, "मेरा कुल पीढ़ीयों से ही वायुयानों के चालक का कार्य करता रहा है। कुछ वर्ष पूर्व युद्धकार्य में घायल हो गया था अत: सक्रिय सहयोग करने के अयोग्य हो जाने पर वानप्रस्थ ले वन में ही रहता हूँ।"

: 27 :

रावण के निर्देशानुसार जहाँ एक ओर राक्षस श्रीराम की कुटिया की ओर उपद्रव करने नहीं आते थे, वहाँ राम भी अपने वचनानुसार अकारण किसी पर शस्त्र उठाना नहीं चाहते थे। परन्तु होनि अति प्रवल है। संयोगवश रावण की विधवा वहन शूर्पणखा, जो खर के साथ उसके जन-स्थान में रहती थी, एक दिन वन में भ्रमण करती हुई राम की कुटिया की ओर आ पहुँची।

राम और सीता शिलाओं पर वैठे गोदावरी नदी की शोभा देख रहे थे कि रावण की वहन की दृष्टि उन पर पड़ गई। ऋषि कन्या होने के कारण रूप-लावण्य में शूर्पणखा एक सुन्दर स्त्री थी। उसे राम एक अति सुन्दर और ओजस्वी पुरुष प्रतीत हुआ।

शूर्पणखा सीता और राम के सम्मुख आकर खड़ी हो गई। राम ने उठकर उसका सत्कार किया और उसका परिचय पूछा। शूर्पणखा ने वताया, "मैं लंकाधिपति रावण की विधवा वहन शूर्पणखा हूँ?"

"आप इस निर्जन वन में किस कारण घूम रहीं हैं?"

"मै समीप ही राक्षस जन-स्थान में रहती हूँ। आज इस वन तथा नदी की शोभा देखने यहाँ आई हूँ।"

राम ने फल-फूल से उस स्त्री का सम्मान किया, परन्तु शूर्पणखा के मन को राम एक इच्छित वर समझ आया।

वह वोली, "मुझे आप वहुत ही सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं।"

"यह ईश्वर की महिमा है। जगत् की सव सुन्दर और श्रेष्ठ वस्तुएँ उसी की वनाई हुई हैं।"

"आप दो पुरुषों के साथ एक ही स्त्री को देखकर विस्मय होता है।"

इसमें विस्मय करने के लिए स्थान नहीं है। वह मेरा छोटा भाई है लक्ष्मण। हम दोनों अयोध्या के भूतपूर्व नरेश महाराज दशरथ के पुत्र हैं। यह हैं सीता, मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मपत्नि। यह विदेहराज जनक की पुत्री है।"

"आप मुझसे विवाह कर लें।"

"परन्तु हमारी परम्परा में अनावश्यक दूसरी पत्नी वर्जित है।"

शूर्पणखा लक्ष्मण की ओर घूमी। उसे वह राम से भी अधिक सुन्दर और युवा प्रतीत हुआ। वह उसके पास जा पहुँची। लक्ष्मण एक पात्र में जल लिए फूलों की क्यारियों को सींच रहा था। वह शूर्पणखा को प्रश्नभरी दृष्टि से देखने लगा।

शूर्पणखा ने उसे अपने वहाँ आने का प्रयोजन बता दिया। लक्ष्मण ने कह दिया, "मैंने यह व्रत लिया हुआ है कि जब तक वन में रहूँगा, ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा, इस कारण मैं विवाह नहीं करूँगा।"

"परन्तु क्या मुझ-जैसी सुन्दर स्त्री भी आपके व्रत को भंग नहीं कर सकती?"

"तुम सुन्दर अवश्य हो, परन्तु व्रत तो व्रत है। मैंने एक पत्नी व्रत लिया है और मैं उसको भंग नहीं करना चाहता। यह पाप हो जायेगा।"

निराश शूर्पणखा पुन: राम को आग्रह करने लग गई परन्तु राम ने कहा, "मैं विवाहित हूँ, साथ ही मैं अकारण एक से अधिक पत्नियाँ रखना ठीक नहीं समझता। इस कारण मैं अपनी प्रिय पत्नी से वचनबद्ध हूँ कि मैं उसके अतिरिक्त किसी स्त्री को पत्नी के रूप में नहीं देखूँगा।"

शूर्पणखा ने विचार किया कि यदि वह सीता को मार डाले तो राम उससे मुक्त हो जाएगा और फिर उससे विवाह कर लेगा। सीता राम के समीप एक अन्य शिला पर बैठी थी। शूर्पणखा उसकी ओर लपकी और उसे दाँतों तथा नाखूनों से नोचने लगी। अचानक हुए इस हमले से सीता चीखें मारती शिला से गिर पड़ी।

लक्ष्मण अपना काम छोड़ भागता हुआ आया और सीता को छुड़ाने लगा। राम ने कह दिया, "इस स्त्री को पाठ पढ़ाना चाहिए कि हम आर्य लोगों में जीवन-पद्धति वह नहीं जो राक्षसों में है।"

लक्ष्मण ने हाथ में पुष्पों की क्यारियों में से घास निहारने के लिए हँसिया पकड़ा हुआ था। उसके मन में आया कि इस स्त्री का गला काट देना चाहिए, परन्तु एक स्त्री की हत्या से अधिक कठोर दण्ड यह समझ आया कि इसे कुरूप कर दिया जाए। एक स्त्री के लिए उसे कुरूप कर देना मृत्यु-दण्ड से भी अधिक भयंकर था।

लक्ष्मण को यह सब विचार करने में देर नहीं लगी। उसने अपने हाथ में पकड़ी हँसिया से शूर्पणखा के कान और नाक काट दिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाक और कान कटने पर तो शूर्पणखा ऊँचे स्वर में अपने भाई खर को पुकारती हुई जन-स्थान की ओर भाग गई।

लक्ष्मण ने कहा, "भैया! हत्या के पाप से बचने के लिए मैंने यह किया है। इसने मार डाले जाने योग्य अपराध किया था। यह भाभी की हत्या करने का यत्न कर रही थी। इसका प्रतिकार हत्या ही था, परन्तु मैंने, उसे पश्चाताप करने के लिए जीवन-दान दे दिया है।"

राम ने मुस्कराते हुए कहा, "यह ठीक किया है। परन्तु लक्ष्मण! अब इस वन में शान्तिपूर्वक जीवन चलना कठिन हो जायेगा। यह नक्कटी अपने भाई के पास गयी है और वह इसकी दुर्दशा देख, बिना इसका कारण पता किये हमारी हत्या करने आयेगा।"

"तो क्या हम उनका विरोध करने की क्षमता नहीं रखते?"

"मैं समझता हूँ कि हमारा वन के इस भाग में आने का प्रयोजन सिद्ध हो रहा है।"

: 28 :

जिस दिन शूर्पणखा को घायल कर आश्रय से भगाया गया था, उससे अगले ही दिन राम के आश्रम को खर के सेनापति त्रिशिरा ने अपने सैनिकों सहित घेर लिया।

राम और लक्ष्मण कुछ इसी प्रकार की घटना की आशा करते थे। युद्ध हुआ। राम ने त्रिशिरा को युद्ध में मार गिराया तो उसके साथी भयभीत मृगों की भाँति भाग खड़े हुए।

इसके कुछ ही काल उपरान्त खर ने सेनाध्यक्ष दूषण और चौदह सहस्त्र राक्षस सेना ने एक साथ आश्रम पर धावा बोल दिया। घोर युद्ध हुआ। विष्णु-अस्त्र ने अपना कार्य ऐसे किया मानो एक आरे के सामने लकड़ीयाँ कटती चली जाती हैं अथवा भयंकर आँधी के सम्मुख घास-फूस उड़ता चला जाता है। चौदह सहस्त्र सेना पूर्णत: समाप्त हो गई।

इस युद्ध में खर और राम का द्वन्द्व भी हो गया। बाणों से और पीछे खड्गों से युद्ध हुआ और राम ने शीघ्र ही खर का वध कर दिया।

सेनाध्यक्ष दूषण अकेला रह गया तो वह राम से लोहा लेने के लिए आगे बढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया। दूषण को मारने में उतना कष्ट भी नहीं उठाना पड़ा, जितना कि खर और त्रिशिरा के वध में हुआ था।

सायं होने से पूर्व पूर्ण जन-स्थान में भगदड़ मच गई। राक्षस स्त्रियाँ और वृद्धजन समझ गये कि रघुकुल के ये दोनों वंशज अपने अस्त्रों से पूर्ण जन-स्थान को फूँक सकते हैं। रात-ही-रात में जन-स्थान खाली हो गया। वृद्ध राक्षस व सैनिकों की स्त्रियाँ अपने बाल-बच्चों के साथ सीधे सागर तट की ओर भागे व नौकाओं द्वारा लंका को प्रस्थान कर गये।

अगले दिन प्रात:काल तक जन-स्थान के खाली हो जाने का समाचार पूर्ण दण्डकारण्य में फैल गया और अरण्य के शेष बचे आश्रमों में ढोल, नगारे इस विजय को मनाने के लिए, बजाये जाने लगे। बड़े-बड़े यज्ञों और भोजों का आयोजन होने लगा और इसे ही पूर्ण विजय का लक्षण समझ कुछ मुनि राम का धन्यवाद करने उनके आश्रम में आ पहुँचे।

श्रीराम ने मुनियों का स्वागत किया और उनके मनोद्गारों को सुन कह दिया, "मुनिवर! रोग का मूल कारण जब तक बना है, रोग पीड़ा देता रहेगा। इस कारण आप लोग मेरे लिए परमात्मा से प्रार्थना करते रहिए। मैं समझता हूँ कि यह अभी आरम्भ ही है।"

खर के मारे जाने और पंचवटी वाले राक्षसों का जन-स्थान के उजड़ जाने का समाचार सुन रावण के क्रोध का पारावार नहीं रहा। यह समाचार लाने वाली रावण की बहन शूर्पणखा ही थी। शूर्पणखा रावण के आगार में जा अपना घायल मुख दिखाकर बताने लगी, "देखो भाई! मेरी क्या दुर्दशा हुई है?"

"कैसे हो गई तुम्हारी दुर्दशा?"

"पहले तो तुमने मेरे पति कालकेय प्रमुख को अपने विरुद्ध आवाज़ उठाने पर मार दिया, सभी कालकेयों को श्री लंका से भगा दिया, उन्हें सुदूर पूर्व और पश्चिम के द्वीपों मे छुप कर रहना पड़ रहा है। एकाकि जीवन व्यतीत करने को मुझे मजबूर कर दिया गया है। कोई भी उठ कर मेरा अपमान कर देता है। अब तो बात सीमा से पार हो गई है। मेरे अंग भंग कर दिये गए हैं।"

"किसने किया है, यह सब।"

"पंचवटी में गोदावरी के तट पर दो कुमार एक सुन्दर स्त्री के साथ रहते हैं। अपने को कौशल नरेश दशरथ के पुत्र कहते हैं। उनमें से छोटे ने अपने हाथ से यह कुकृत्य किया है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो यहाँ क्यों आयी हो? खर और दूपण कहाँ हैं?"

"भैया! वे दोनों और उनके अधिकाँश सैनिक युद्ध में मारे गए हैं। जन-स्थान में वचे-खुचे लोग भय के मारे वह स्थान छोड़ लंका को आ रहे हैं"

"और उनके साथ कितनी सेना है?"

"वे केवल दो भाई हैं।"

रावण विचार करने लगा कि यह कैसे सम्भव हो गया? वह जानता था कि उसके नाना के भाई ने विष्णु से युद्ध किया था और विष्णु ने सुदर्शन चक्र नाम के अस्त्र से सहस्त्रों की संख्या में राक्षसों को एक ही वार में गाजर-मूली की भाँति काट डाला था।

रावण ने सुन रखा था कि विष्णु की मृत्यु हो चुकी है और सुदर्शन चक्र उसके अतिरिक्त अन्य कोई प्रयोग नहीं कर सकता। इस कारण वह विचार करता था कि इन राजकुमारों के पास भी क्या सुदर्शन चक्र है?

रावण को परेशान देख शूर्पणखा ने यह भी वताया, "मैंने सुना है कि यह वही व्यक्ति है जिसने मारीच की माँ ताड़का का वध किया था और मारीच को सैकड़ो योजन दूर दक्षिण में आना पड़ा।"

इस पर रावण ने पूछा "तो तुम क्या चाहती हो?"

"मैं चाहती हूँ कि तुम उनकी पत्नी सीता को अपनी भार्या वना लो। उसे तुम्हारी दासी वने देख मेरे चित्त को शान्ति मिलेगी। उसी के कारण तो उन्होंने मुझे यह घाव दिए हैं।"

"एवम्स्तु!" रावण ने कहा और वोला, "यह हो जाएगा। परन्तु तुम सवसे पहले हमारे चिकित्सक सुपेण के पास जाओ और अपनी उचित चिकित्सा का प्रवन्ध करो।"

वहन को भेजने के पश्चात रावण मन ही मन विचार करने लगा था कि किस प्रकार इन वनवासी राजकुमारों का मान-मर्दन हो सके। लंकाधिपति रावण की वहन को घायल करने का प्रतिकार तो ठीक वही हो सकता है जो वहन ने वताया है। सीधे सीधे युद्ध से वह वचना चाहता था। कुछ सोचता हुआ रावण मारीच के पास उसके आश्रम में जा पहुँचा। वह चाहता था कि किसी प्रकार की छलना खेली जाए जिससे साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे

मारीच माँ के वध के पश्चात हताश हो, लंका द्वीप में सागर-तट पर रहता था और अपना जीवन भगवत्-भजन में व्यतीत कर रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावण को अपनी कुटिया पर आया देख वह उठकर उसका स्वागत करने लगा और सम्मान सहित अपनी कुटिया में ले गया। उसे बिठाकर पूछने लगा, "महाराज? किस प्रयोजन से यहाँ आने का कष्ट किया है?"

रावण ने शूर्पणखा के साथ घटी दुर्घटना और खर तथा दूपण के मारे जाने का वृत्तान्त सुना दिया। इस पर मारीच ने पूछ लिया, "परन्तु बहन शूर्पणखा उन तपस्वियों के पास गयी ही क्यों थी? वे वन में अपने दुर्भाग्य का काल व्यतीत कर रहें हैं। यह अवश्य उनको कष्ट देने गयी होगी?"

"यह तो मैंने पूछा नहीं कि वह वहाँ किस काम से गयी थी?"

"शूर्पणखा ने अवश्य उनको कष्ट दिया होगा जो उन्होंने बहन के नाक-कान काटें हैं और खर, दूपण तथा चौदह सहस्त्र सैनिकों का वध किया है।"

"परन्तु बहन के भाई को अपनी बहन के अपमान का बदला लेने का अधिकार तो है?"

"यह ठीक है, परन्तु लंकेश! मैंने सुन रखा ही कि इस देश का एक राजा है। उसका नाम रावण है। राजा की सब प्रजा अपनी सन्तान और सम्बन्धी होती है। सबके साथ समान भाव रखना राजा का कर्त्तव्य है।"

"कर्त्तव्य वह है जिसके पालन करने की सामर्थ्य हो।"

"तो महाराज! आपकी सामर्थ्य क्या करना चाहती है?"

"बहन से किए गये अपमान का मैं प्रतिकार लूँगा और मैं समझता हूँ कि उसके लिए कुछ छलना खेलनी पड़ेगी।"

"क्या छलना खेलना चाहते हैं?"

"मैं साधु के रूप में उनकी कुटिया पर जाना चाहता हूँ और उसकी भार्या का हरण कर अपने प्रासाद की शोभा बढ़ाना चाहता हूँ।"

"यह पाप होगा राजन।"

"पाप पुण्य का फैसला राजा करता है और बुढ़ापे में तुम्हें पाप पुण्य याद आ रहे हैं। तुम होते कौन हो मुझे शिक्षा देने वाले?

"ठीक है राजन! परन्तु आप वहाँ जाएँगे कैसे? मैने सुना है कि उनकी कुटिया उसी यन्त्र से सुरक्षित है, जिससे अगस्त्य जी का आश्रम सुरक्षित है और महाराज जानते हैं कि उस यन्त्र के लगे होने पर बिना स्वामी की इच्छा के कोई व्यक्ति भीतर जा नहीं सकता। साथ ही दोनों भाइयों में से कोई-न-कोई उस स्त्री की रक्षा के लिए कुटिया पर अवश्य रहता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं इसके लिए ही तुम्हारे पास आया हूँ। तुम कोई ऐसा छल करो, जिससे दोनों भाई एक साथ कुटिया से दूर हो जायें और मैं उस यन्त्र की काट का यत्न कर उस स्त्री का अपहरण कर सकूँगा।"

"यह कार्य भय से रहित नहीं है।"

"किस बात का भय है?"

"उन पर छलना चल नहीं सकेगी और यदि उनको पता चला कि वे ठगे गये हैं तो वह छलना खेलने वाले की हत्या भी कर सकते हैं।"

"तो तुम अब मरने से डरने लगे हो? तब सुन लो। तुम यदि मेरे कहे अनुसार नहीं करोगे तो मैं तुम्हारी अभी हत्या कर दूंगा।"

"पर तुम मुझे क्या करने को कहते हो?"

"तुम एक अति सुन्दर स्वर्ण की आभा वाला हिरण वहाँ ले जाओ। वह हिरण को जीवित पकड़ने लपकेंगे। मुझे इन आर्यों के स्वभाव का ज्ञान है। वे अपने निवास में विचित्र वस्तुओं का संग्रह करते रहते हैं। इस कारण यदि तुम अति लुभायमान रूप-रंग का हिरण लेकर जाओगे तो वे उस हिरण को जीवित पकड़कर अपने आश्रम में बाँध रखने का यत्न करने लगेंगे।

"इस प्रकार तुम उन दोनों भाइयों को कुटिया से दूर ले जा सकोगे। उस समय मैं वहाँ पहुँच उस स्त्री का हरण कर लूँगा।"

"परन्तु उस देवी की कुटिया की प्राचीर का क्या करोगे?"

"मैं उसे पार करने का उपाय करूँगा। जब छलना करनी है तो इसका भी उपाय ढूँढा जा सकता है।"

"परन्तु लंकेश! मुझे इस सब में भय लगता है।"

"मरने का?"

"हाँ! यह जीवन अति दुर्लभ वस्तु है। इसके रस अति प्रिय हैं। इनको छोड़ जीवन समाप्त करने को जी नहीं चाहता।"

"तो मैं अभी तुम्हारा जीवन समाप्त कर देता हूँ।" रावण ने खड्ग निकाल लिया। मारीच को मृत्यु सामने दिखायी देने लगी। इस कारण वह तैयार हो गया। उसने विचार किया कि यदि मरना ही है तो अपने राजा की आज्ञा का पालन करते हुए मरने में लाभ है। सम्भव है वह अपने छलना-कार्य में सफल हो जाये। अन्यथा रावण की खड्ग सामने दिखायी दे रही है। वह जानता था कि यह क्रूर प्रवृत्ति का व्यक्ति अपनी इच्छा पूरी करने के लिए उसकी हत्या करने में संकोच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करेगा। इस प्रकार विचार करता हुआ वह रावण की योजना में सम्मिलित हो गया।

: 29 :

मारीच ने अपने आश्रम में पालित एक अति सुन्दर मृग लिया, उस पर सुनहरी लेप किया। उस मृग को उसने श्रीराम और सीता की कुटिया के समीप छोड़ दिया। वह मृग कुछ भोजन इत्यादि की लालसा में राम के आश्रम के समीप घूमने लगा।

सीता की दृष्टि उस सुनहरी आभायुक्त मृग पर पड़ी तो वह मृग विलक्षण प्रतीत हुआ और वनवासी जीवन में मनोरंजन की वस्तु समझ आया। इस कारण वह उस सुनहरे हिरण को पाने की इच्छा करने लगी। सीता ने राम से कहा, "इसे पकड़ लाइए। मैं इसे अपने आश्रम में पालूँगी।"

"और यदि पकड़ न सका तो? यह तीव्र गति से भागने में सक्षम है।"

"तो आर्य! इसे मारकर इसका चर्म ले आइये। वह मैं अपनी कुटिया की सजावट में प्रयोग करूँगी।"

राम ने विचार किया कि इतने वर्ष के विवाहित जीवन में सीता ने यह एक वस्तु ही तो माँगी है। इस कारण अपना धनुष-वाण उठा कर वह लक्ष्मण को सावधानी से रहने के लिए कह हिरण को पकड़ने चल पड़े।

हिरण तो राम को छलने के लिए ही लाया गया था। जब श्रीराम उसे पकड़ने को लपके तो भयभीत मृग मारीच की और भागा। मारीच योजनानुसार वृक्षों की ओट लेता हुआ राम की कुटिया से दूर भागा। मारीच का उद्देश्य था कि हिरण पकड़ा न जाये और कुटिया से वहुत दूर चला जाये। इसी में वह अपनी भलाई समझ रहा था। अत: स्वयं भी छुपा हुआ हिरण को भगाता हुआ कुटिया से दूर भागा जा रहा था।

जव मृग और मारीच भागते हुए कुटिया से पर्याप्त दूर चले गये तो मारीच ने उपयुक्त समय समझ, 'हे सीते; हे लक्ष्मण!' का शव्द वहुत जोर से किया।

इस समय राम को समझ में आया कि हिरण इसी व्यक्ति के संकेत से भागता चला जाता है। राम व्यर्थ हत्या न कर, हिरण को जीवित पकड़ना चाहते थे, परन्तु जव एक व्यक्ति को सीता और लक्ष्मण को पुकारते सुना तो उन्हें समझ आ गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कि यह कोई षड्यन्त्रकारी है और उस व्यक्ति को पुनः 'हे सीते! हे लक्ष्मण!' का शोर करते सुन उस पर वाण चलाकर उसको मरणासन्न कर दिया।

जव घायल हो मारीच भूमि पर गिरा और तड़पने लगा तो राम उसके समीप जा पूछने लगा, "तुम कौन हो और लक्ष्मण तथा सीता को किसलिए पुकार रहे हो?"

इस पर मारीच ने कहा, "महाराज! मैं ताड़का का पुत्र मारीच हूँ। आपने मेरी माँ की हत्या की थी।"

"यह तो ठीक है।" परन्तु तुम सीता और लक्ष्मण को क्यों पुकार रहे थे?"

"कुछ विशेष वात नहीं।" मारीच ने अभी भी छलना खेलते हुए कहा, "मैं मरने से पूर्व उनके दर्शन करना चाहता था।"

"वे तो यहाँ से वहुत दूर हैं।"

"मेरी आवाज वहाँ तक अवश्य पहुँच गयी होगी। वे अवश्य आयेंगे।"

"इससे तुम्हें क्या लाभ होगा?"

"यह मन की भावना है।

राम ने समय व्यर्थ गँवाने के स्थान पर वापस जाना उचित समझा और मारीच को यह कहा, "यदि उनके यहाँ पहुँचने तक तुम जीवित रहे तो दर्शन कर सकोगे।"

परन्तु मारीच तो प्राण छोड़ रहा था।

राम वन में कुटिया से वहुत दूर चले आए थे। वापस लौटते हुए अभी आधा मार्ग ही पार किया था कि लक्ष्मण लम्वे-लम्वे डग भरता हुआ आता दिखायी दिया। राम ने विस्मय में उसके मुख पर देखते हुए पूछा, "क्या वात है लक्ष्मण! इधर कहाँ जा रहे हो?"

"भैया! यह आर्त्तनाद किसने किया था? हमें वहुत दूर से ये शव्द सुनायी दिये थे— 'हे सीते! हे लक्ष्मण!!"

"हाँ, वे शव्द एक राक्षस ने किये थे जिसे मैंने मार डाला है। परन्तु तुम सीता को अकेला छोड़ चले क्यों आये?"

"भैया! मैं तो आना नहीं चाहता था, परन्तु जव माता सीता को यह विश्वास हो गया कि आपका कुछ अनिष्ट हो रहा है तो उन्होंने मुझे डाँट-फटकार कर आपके पीछे भेज दिया है। मैं आते हुए वह प्राचीर रक्षा यन्त्र कुटिया की रक्षा के लिए लगा आया हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं समझता हूँ यह ठीक नहीं हुआ, हमें वापस चलना चाहिये।"

दोनों भाई वापस कुटिया की ओर लपके। परन्तु उनके कुटिया तक पहुँचने से पूर्व वहाँ का नाटक खेला जा चुका था। कुटिया के कुछ अन्तर पर 'हाय राम! हाय राम!!' का आर्तनाद हो रहा था। लक्ष्मण कुटिया में गया। प्राचीर सुरक्षा यन्त्र निष्क्रिय था और कुटिया खाली पड़ी थी।

लक्ष्मण ने जब बताया कि कुटिया में माता सीता नहीं है तब दोनों 'हाय राम! हाय राम!!" के शब्द की ओर गये। वहाँ घायल जटायु मरणासन्न भूमि पर पड़ा था। जटायु ने बताया, "देवी सीता की चीखों का शब्द सुन मैं अपनी कुटिया से यहाँ आया तो एक साधु-वेशधारी व्यक्ति उनको बाँह से पकड़ घसीट कर एक छोटे-से विमान की ओर ले जा रहा था। मैंने लपककर सीता को छुड़ाने का यत्न किया तो उसने सीता को विमान में धकेल उसका द्वार बन्द कर मुझसे लड़ना आरम्भ कर दिया।

"वह मुझसे अधिक बलवान और मुझसे शरीर में भी अधिक लम्बा-चौड़ा था और मैं शस्त्रहीन था। इस कारण उसने अपनी तलवार से मुझे घायल कर दिया। जैसे ही मैं भूमि पर गिरा तो उसने मेरी दोनों बाहें काट दीं और वह विमान पर चढ़ कर दक्षिण की ओर चला गया है।"

दोनों भाई इस कथा को सुन जटायु का मुख देखते रह गये। जटायु ने जल माँगा तो लक्ष्मण भागता हुआ कुटिया में गया और एक कमण्डल में जल ले आया। जल पीने के कुछ ही देर बाद जटायू बेहोश हो गया। उसी बेहोशी में उसके प्राण निकल गये।

दोनों भाइयों ने जटायु का दाह-संस्कार किया; तदनन्तर विचार करने लगे कि यह कौन हो सकता है जिसने सीता का अपहरण किया है। इतना तो निश्चय ही था कि मारीच का कोई साथी होगा। अवश्य वह राक्षस होगा। वह विमान रखता है। इन बातों से दोनों भाई इस परिणाम पर पहुँच गये कि वह रावण ही हो सकता है।

: 30 :

इनके पास विमान नहीं था और रावण की नगरी लंकापुरी के बारे में केवल सुना था कि वह दूर दक्षिण में कहीं सागर के मध्य में है। उन्हे वहाँ की राह का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता नहीं था। वे कब तक उसे ढूंड कर वहाँ पहुँचेंगे और तब तक सीता का क्या अनिष्ट हो चुका होगा, यही विचार दोनों को साल रहे थे।

इस पर भी राम और लक्ष्मण दक्षिणाभिमुख हो चल पड़े। मार्ग में चलते हुए जब निराशा से भर जाते थे तो राम विलाप करने लगते। लक्ष्मण अपनी भूल पर पश्चाताप करता हुआ रो पड़ता।

वहाँ उस निर्जन वन में कोई तीसरा दिखायी नहीं देता था, जो उनको साहस बँधा सके। इस पर भी मानव-प्रकृति से विवश वे दक्षिण की ओर चल रहे थे।

मार्ग में उन्हें एक स्त्री मिली। विशालकाय, एकदम कृष्णवर्ण, बिखरे केश व कच्चा माँस खाने से बढ़े हुए तथा विकृत हुए दाँत जो मुख से बाहर निकल रहे थे। वह स्त्री दो सुन्दर युवकों को देख अति विकराल हँसी हँसती हुई दोनों भाइयों के सामने आ खड़ी हुई।

राम और लक्ष्मण इस नारी को इस प्रकार सामने आ खड़ी देख मार्ग से एक ओर हट जाने के लिए कहने लगे। उस स्त्री ने अपने मुख पर हँसने का भाव बनाते हुए कहा, "मुझे इस वन में रहते हुए कितने ही वर्ष हो गये हैं। मैं तुम दोनों से विवाह करूँगी।"

उस भयंकर मूर्ति स्त्री को देख राम ने पूछा, "तुम हो कौन? हमें तुम पर दया आती है।"

"मैं अयोमुखी हूँ। दया तो मैं तुम पर कर रही हूँ। तुम शरीर से अति कोमल प्रतीत होते हो। तुम्हारे माँस की कोमलता का अनुमान लगा मेरे मुख से लार टपक रही है। परन्तु मैं तुमसे विवाह करूँगी और तुमको मारूँगी नहीं।"

इतना कहते-कहते उसने लक्ष्मण को पकड़ लिया। लक्ष्मण ने तुरन्त अपना खड्ग निकाला और उसके कान काट डाले। इस पर वह रक्त से लथपथ चीखें मारती हुई लक्ष्मण को धक्का दे गहन वन में भाग गई।

दोनों भाई उसे भागता देखते रहे। इस वन में किसी मनुष्य से मिले भी तो विचित्र स्थिति में। इसके बाद वे पुन: पश्चिम-दक्षिण कोण की ओर चल पड़े।

वन बहुत सघन था परन्तु उस निर्जन वन में भटकते भटकते आगे बढ़ते रहे। कई दिन के उपरान्त एक विचित्र प्रकार का पुरुष भी मिला। शरीर से वह एक रुण्ड वृक्ष की भाँति लगता था। उसकी बाँहे बहुत लम्बी और बलशाली थीं। गर्दन लगभग नहीं थी। उसका सिर तो जैसे उसके सीने में ही घुसा हुआ था। विशाल पेट वाले उस राक्षस को दूर से देखने पर केवल उसका पेट-ही-पेट दिखायी देता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। ऐसा प्रतीत होता था कि उसकी आँखें पेट के ऊपर ही जोड़ दी गई हों।

दोनों भाई उसकी आकृति पर विस्मित रह गये। उसने तुरन्त अपनी लम्वी-लम्वी वाँहों को फैलाया और दोनों भाइयों को पकड़ लिया। दोनों भाइयों ने अपने-अपने खड्ग निकाले और उसकी वाँहें काट दीं।

इस राक्षस का नाम कवन्ध था। उसने जव देखा कि वह मर रहा है तो उसने पूछा, "आप कौन हैं? इस वन में तो इस प्रकार के शस्त्रों को रखने वाला पहले कोई मिला नहीं।"

राम को उस पर दया आ गयी और उसने पूछा, "तुम यहाँ कव से रहते हो?"

उसने वताया, "मैं इस प्रकार का कुरूप शरीर नहीं रखता था। मैं इस वन में इस कारण आया था कि यहाँ किसी प्रकार के नागरिक आचार-विचार के प्रतिवन्ध के विना रहा जा सकता था। पहले पशुओं का माँस खाता था और पीछे जव भी कोई मनुष्य मिल जाता तो उसे पकड़ खा जाता था।

एक वार मेरा एक ऋपि से सामना हो गया। उसके कोमल शरीर को देख मुझे उसका माँस खाने की लालसा जाग पड़ी। मैंने उसे छुआ ही था कि उसने जोर-से अपना हाथ मेरे सिर पर मारा और मेरा सिर मेरे धड़ में धँस गया। मेरी गरदन तो जैसे रही ही नहीं। आँखे, नाक, मुख तो ऐसे हो गए जैसे पेट पर लगे हों। मेरी टांगे सुन्न हो गई और मैं स्तव्ध खड़ा रह गया। मैं चल फिर नहीं पा रहा था। मैं दया से उस ऋपि को देखता रह गया।

"मैंने उस ऋपि से कहा कि मैं चल नहीं पा रहा महाराज। इस प्रकार तो मैं मैं भूखा मर जाऊंगा।" तव उस ऋपि ने मेरी भुजाओं में यह शक्ति दे दी कि जिससे यह दूर तक वढ़ सकें व मैं अपना भोजन प्राप्त कर सकूँ।

"अव आपने मेरी वाँहें ही काट दी हैं। इससे तो मैं अपना भोजन नहीं पा सकूँगा और मैं भूख से तड़प कर मरूंगा। आप मुझ पर दया कर इस शरीर से मुक्ति दो, कृपया मुझे मृत्यु दो।"

राम इस शरीर में वन्दी जीव को मुक्त करने के विचार से उसे मार डालने के लिए तैयार हो गए, परन्तु इससे पूर्व उससे पूछने लगे, "हम यहाँ किसी ऐसे मानव की खोज में हैं जो हमारे कार्य में सहायता कर सके।"

"आपका क्या कार्य है?"

इस पर राम ने अपना संक्षिप्त परिचय तथा अपने साथ हुई दुर्घटना का वर्ण न कर अपनी खोज का लक्ष्य वता दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कवन्ध नाम के उस व्यक्ति ने कहा, "यहाँ से पूर्व दक्षिण की ओर जाइये। उधर ही आपको मानवों की वस्तीयाँ मिलेंगी। पम्पापुर पुष्करिणी के किनारे उसी नाम के स्थान पर कुछ लोग रहते हैं। वहाँ आपको सहायता मिल सकती है।"

कवन्ध जव मर गया तो उसका दाह-संस्कार किया गया और दोनों भाई उसी दिशा में चल पड़े जिधर कवन्ध ने मनुष्यों की वस्ती की सम्भावना वतायी थी।

: 31 :

ज्यों-ज्यों राम, लक्ष्मण दक्षिण की ओर चलते गये, उन्हें वन कम और नदी, नाले तथा मैदान सुहावने दिखायी देने लगे।

"भैया!" लक्ष्मण ने किष्किन्धा क्षेत्र की शोभा को देख कर कह दिया " यहाँ वन, नदियाँ, घाटियाँ और सम्पूर्ण पर्वतीय क्षेत्र अत्यन्त सुन्दर हैं।"

"लक्ष्मण! देश, भूमि, पर्वत, नदी-नाले ये सव निर्जीव पदार्थ हैं। ये स्वत: न तो सुख देने वाले होते हैं और न ही दु:ख कारक। देश में रहने वाले लोग ही वहाँ के निर्जीव पदार्थों को सुहावना, सुखकारक और सुगन्धिमय वना देते हैं। परन्तु जव मन अशान्त हो तो उस समय कोई अनुभूति नहीं होती और इस समय मेरा मन अशान्त है।"

जव वे पर्वत की चोटी पर पहँचे तो पर्वत पार का मनोरम दृश्य तव उनको दृष्टिगोचर हुआ। उस पर्वत के पार पम्पापुर नगर था। यह पम्पापुर सरोवर के किनारे वसा हुआ था। सागर के अनुपात में तो यह एक ताल ही था, परन्तु सामान्य ताल के अनुपात में यह सरोवर कहा जा सकता था। दृश्य अति मनोरम था। दोनों भाई सरोवर की शोभा देख मोहित हो गये। वे कितने ही काल तक सरोवर की शोभा, उसमें खिले कमल और इस नगर की सौरभयुक्त वायु में मोहित से खड़े रह गये।

राम के मुख से एकाएक निकल गया, "जल पर तैरती इन कमल पंखुड़ियों को देख मुझे कमल-लोचना सीता की याद आने लगी है। न जाने इस समय वह क्या करती होगी। इस कल्पना से मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है।"

तभी लक्ष्मण की दृष्टि दूर वृक्षों के झुरमुट में से उठते धुएँ पर पड़ी। वह धुएँ को देख चौंक पड़ा और उसने राम का ध्यान उस ओर कर कहा, "वहाँ किसी मनुष्य का वास प्रतीत होता है। हमें वहाँ चलना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
राम ने भी धुआँ देखा तो अपने मन की व्यथा को दवा दिया।

दोनों भाई वृक्षों के उस झुरमुट में जा पहुँचे जहाँ से धुआँ उठता दिखायी देता था। वहाँ आम, जामुन और बेर के घने वृक्ष लगे थे। उनके बीचोंबीच एक कुटिया बनी थी और उस कुटिया के बाहर वृक्षों की छाया में सपाट स्थान पर आसन जमाये एक वृद्धा बैठी थी। वह उस समय ध्यानावस्थित थी।

दोनों भाई उस रमणीय आश्रम में इस ओजस्विनी तपस्विनी को ध्यान में मग्न देख चकित रह गये। पिछले कई दिन के भयानक और नीरस अनुभवों के उपरान्त वर्तमान सुरम्य दृष्य अत्यन्त सुखद और चित्त को स्थिर करने वाला था।

तपस्विनी के सामने यज्ञ की अग्नि अभी भी जल रही थी। उसमें से सुगन्धित धुआँ वहाँ के पूर्ण वायु-मण्डल को सुरभित कर रहा था।

एकाएक तपस्विनी ने आँखे खोलीं और दोनों भाइयों को कुछ अन्तर पर सामने खड़ा देखा तो हाथ के संकेत से समीप बुला सामने भूमि पर बैठने के लिये कहा।

दोनों भाईयों ने हाथ जोड़ प्रणाम किया और सामने बैठ गये।

तपस्विनी ने आशीर्वाद-सूचक हाथ उठाया और पूछ लिया, "तुम राम, लक्ष्मण हो?"

"हाँ माताजी!" लक्ष्मण ने उत्तर में कहा। वह कहने ही वाला था कि वे अयोध्या नरेश महाराज दशरथ के पुत्र हैं कि उस वृद्धा ने कहा, "तुम्हारा पूर्ण इतिहास यहाँ विख्यात है। यहाँ के लोग यह भी जानते हैं कि बड़े भाई की पत्नी सीता का अपहरण हो गया है। यहाँ अनुमान लगाया जा रहा है कि अपहरण करने वाला लंकाधिपति रावण है।"

"देखो, राम! मैं एक मास से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ, परन्तु तुम भटकते हुए अपना समय व्यर्थ गँवा रहे थे।

"भगवान् की कृपा से अब तुम्हें इस ओर आने की प्रेरणा मिली है। मैं समझती हूँ कि यहाँ तुम्हारे कल्याण के साधन उपस्थित हैं।

"मेरा नाम शबरी है। मैं आदिवासी भीलों में उत्पन्न एक महर्षि की शिष्या हूँ और उनसे ही मैंने योग-साधना का मार्ग पाया है।

"अभी इस सरोवर में स्नान करो। इस समय इन वृक्षों से उत्तरे इन ताजे बेरों का अल्पाहार स्वीकार करो और तब जैसा मैं कहती हूँ वैसा करो। मैं समझती हूँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कि तुम्हारा कल्याण होगा।

तदनन्तर राम तथा लक्ष्मण ने पम्पापुर के निर्मल जल में स्नान किया। स्नान के उपरान्त शवरी ने उन्हें फलाहार कराया। जव दोनों भाई फलाहार कर रहे थे तो शवरी उनके सम्मुख बैठ बताने लगी, यहाँ के निवासी अत्यन्त सीधे हैं। वे पर्व तों की कन्दराओं या पेड़ों पर मचान वना कर वानरों के समान रहते हैं। अत: दूसरे प्रदेशों के लोग इन्हें वानर ही कहते हैं। इनका राजा एक वलशाली व्यक्ति है जिसका नाम वाली है। वह राज्य-कार्य में कुशल है और वैसे ईश्वर-भक्त है, परन्तु उसकी वुद्धि पर उसका मित्र रावण छाया हुआ है। उसने अपने राज्य में से राक्षसों को उत्तर की ओर वढ़ने का मार्ग दे रखा है। इस सुविधा के प्रतिकार में रावण ने इस राज्य में कभी कोई उत्पात नहीं मचाया। इस प्रकार शान्ति प्राप्त कर वह राज्य का सुप्रवन्ध करता है। परन्तु इस प्रकार वह स्वयं ही विकृत राक्षसों की क्रूरता व अधर्म का प्रचारक वना हुआ है।

"वह समझता है कि धर्म वलशालियों द्वारा निर्मित विधि-विधान का नाम है। हालाँकि उसके राज्य में सुप्रवन्ध है। इस विचारधारा से वह, रावण की अधर्म -व्यवस्था का पोपक वन कर कुछ-कुछ अनुकरण भी कर रहा है।

"परन्तु दोनों में अन्तर यह है कि रावण की महत्त्वाकांक्षा वहुत ऊँची है और वह देवलोक में शिक्षा प्राप्त होने के कारण महा-अभिमानी भी है। इसके विपरीत वाली रावण से चतुराई और वल में कम न होने पर भी अभिमानी नहीं और वहुत मितभापी है।

"इस पर भी दोनों का जीवन-पथ एक ही है। देखो राम, रावण से सीता को छुड़ा सकना तुम्हारे अकेले के मान की वात नहीं। तुम्हारे पास विष्णु भगवान् का सुदर्शन-चक्र नहीं। इस कारण जो कुछ भगवान् विष्णु ने आज से कई वर्प पूर्व अकेले किया था, तुम कर नहीं सकोगे।

"सुदर्शन-चक्र इन्द्र के पास है। परन्तु उसे विश्वास नहीं कि तुम उस चक्र का प्रयोग भी कर सकते हो। जो उसका प्रयोग नहीं जानता, वह अपने को भी उसमें भस्म कर सकता है। यदि तुम सीता को छुड़ाना चाहते हो तो रावण और उसकी सेना को परास्त कर समाप्त करना होगा। इन राक्षसों ने कई कई विवाह किए हैं और कितनी ही अपहृत नारीयाँ इनके पास रहने को मजवूर हैं। इनके पुत्र व पुत्रीयों की सँख्या अनगिनत होती है और सभी नरभक्षी हो रहे हैं। जव तक तुम एक पीढ़ी समाप्त करोगे, तव तक ये कई गुणा अधिक पैदा हो जाएंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
"अत: सीता को छुड़ाने के लिए रावण की समाप्ति करने की आवश्यकता है और रावण की रक्षा के लिए कोटि-कोटि राक्षस अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित कटिवद्ध उपस्थित हैं। अत: तुम्हें भी किसी राज्य की सहायता लेनी पड़ेगी।

"यदि तुम भरत को संदेश भेजते हो कि वह तुम्हारी सहायता के लिये चतुरंगिणी सेना लेकर आये, तो उसमें कई माह तो लगेंगे ही, साथ ही वाली संधि के अनुसार रावण की सहायता के लिये तैयार हो जायेगा। तव सीता को छुड़ाने के लिये दो राज्यों के विरुद्ध युद्ध कर विजय प्राप्त करनी असम्भव नहीं तो कठिन आवश्य होगी। विशेष रूप में अपनी राजधानी से इतनी दूर युद्ध करना अति कठिन है।

"यहाँ वाली का भाई सुग्रीव देश से निर्वासित वन में छुपा हुआ रहता है। उसके पाँच-दस साथी उसके साथ हैं। वह धर्मात्मा व्यक्ति है तथा वह और उसके सभी साथी विन्ध्याचल में ऋपि-आश्रमों में शिक्षा प्राप्त हैं। उसके पास तुम्हें जाना चाहिये। तुम सुग्रीव की सहायता करो और वह तुम्हारी सहायता करेगा।"

जव राम तथा लक्ष्मण का अतिथि-सत्कार हो चुका तो शवरी ने कहा, "मैं अव अति वृद्ध हो गयी हूँ और यह शरीर अव वोझ प्रतीत होता है। मैं तो एक मास पूर्व ही यह शरीर त्याग देने वाली थी, परन्तु मेरे गुरुवर महर्पि ने अपने प्राण त्यागने से पूर्व मुझे वताया था कि मैं मरने से पूर्व किसी महान आत्मा के दर्शन करूँगी और जव मुझे ज्ञात हुआ कि आप इस ओर आ रहे हो तो मैं इसी पुण्य-वेला की प्रतीक्षा में वैठी थी।

"मैंने आपको यहाँ की परिस्थिति से अवगत करा दिया है और उससे लाभ उठाने का मार्ग भी वता दिया है। परमात्मा आपकी सहायता करेगा। अब मेरा इस लोक का कार्य समाप्त हुआ और मैं अनन्त यात्रा को जा रही हूँ।"

इतना कह उसने दोनों भाइयों को पुन: आशीर्वाद दिया और अपने अन्तिम संस्कार के लिए दोनो भाईयों को अपनी चिता, जो उसने वहुत पहले ही तैयार कर रखी थी दिखा दी। तदुपरान्त तपस्विनी ने प्राणायाम द्वारा श्वास खींचा और प्राण त्याग दिए। शवरी की मृत्यु के वाद श्रीराम ने चिता की अग्नि को प्रज्वलित किया और उसमें उनकी पार्थिव देह का अन्तिम संस्कार कर दिया।

राम, लक्ष्मण समझ गये कि यह महान आत्मा मोक्षावस्था को प्राप्त कर गयी है। शवरी के दाह-संस्कार के उपरान्त वे दोनों सुग्रीव के छुपने के स्थान की ओर चल दिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जहाँ शवरी ने सीता-विमोचन कार्य की कठिनाई वतायी थी वहाँ उसने कार्य को सम्पन्न करने का उपाय भी वताया था। अव राम अविलम्व सुग्रीव से मिलकर इस कार्य को सम्पन्न करना चाहते थे।

: 32 :

दोनों भाई शवरी द्वारा वतायी दिशा की ओर चल पड़े। उन्हें कुछ अधिक दूर नहीं जाना पड़ा। पम्पापुर के तट पर सुग्रीव अपने कुछ साथियों के साथ वन के सघन भाग में रहता था।

वास्तव में सुग्रीव छुपकर वन में रह रहा था और वह किसी अपरिचित व्यक्ति से मिलता नहीं था। जव भी कोई अपरिचित व्यक्ति वन में आता तो वह अपने किसी साथी को भेज उसका परिचय प्राप्त कर लेता था। अनिच्छित अथवा संदिग्ध गति-विधियों वाले व्यक्तियों को उसका भेजा दूत मिथ्या मार्ग पर डाल देता था।

इसी प्रकार राम लक्ष्मण से परिचय हुआ। दोनों भाई वन में सुग्रीव की टोह लेने के लिए भटक ही रहे थे कि एक अति ओजस्वी और हृष्ट-पुष्ट शरीर वाला वनवासी उनके समीप आया और प्रश्न-भरी दृष्टि से उनके मुख पर देखने लगा।

लक्ष्मण ने उससे सुग्रीव के विषय में जानने के लिए पूछा, "वीर पुरुष! हम राजा सुग्रीव की खोज में घूम रहे हैं।"

उस वनवासी ने उत्तर देने के स्थान पर प्रश्न पूछ लिया, "आप कहाँ से आ रहे हैं? आप तो यहाँ के रहने वाले प्रतीत नहीं होते।"

उत्तर लक्ष्मण ने ही दिया, "हम तपस्विनी शवरी के आश्रम से आ रहे हैं? देवी शवरी ने अपना शरीर छोड़ने से पूर्व हमें वताया है कि राजा सुग्रीव इसी वन में पम्पापुर के तट पर कहीं रहते हैं और वह ही हमारा कार्य सिद्ध करने में समर्थ हैं।"

"और आपका क्या कार्य है?"

"यह मेरे वड़े भाई अयोध्यापुरी के महाराज दशरथ के वड़े सुपुत्र हैं। यह पिता के वचन का पालन करने के लिए चौदह वर्ष के लिए वनवास कर रहे हैं। इनकी धर्मपत्नी साथ ही थीं। दो मास हुए, उनका किसी ने अपहरण कर लिया है। हमें तपस्विनी शवरी ने वताया है कि उनका अपहरण लंकाधिपति रावण ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
किया है और उससे माताजी को छुड़ाने के लिए सुग्रीव हमारी सहायता करने का सामर्थ्य रखते हैं।"

इस पर उस वनवासी ने झुककर राम के चरण-स्पर्श किये और कहा, "महाराज! आपके वनवास का पूर्ण वृत्तान्त हम जानते हैं। रावण के घृणित कार्य के विषय में भी हमें एक घटनावश पता चल गया था। लगभग दो माह पूर्व एक स्त्री का अपहरण एक विमान में किया जा रहा था जो— 'हे राम! हे राम!!' कहती हुई विलाप कर रही थी। हमें भूमि पर बैठे देख उसने कुछ भूषण उतारकर विमान से नीचे फेंके थे। उन भूषणों को देखकर ही हम अनुमान कर रहे थे कि वह माता सीता हैं।

"हमने ही तपस्विनी शबरी को यह घटना बतायी थी और वह कह रही थीं कि आप माता सीता को ढूंढ़ते हुए इधर अवश्य आयेंगे। हम आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"और आप कौन हैं? आपका उच्चारण अति शुद्ध है, आपकी भाषा शुद्ध देव-भाषा है और आपका व्यवहार एक आर्य के समान है।" राम ने प्रश्न किया।

"महाराज! मेरा नाम हनुमान है। मैंने महर्षि अगस्त्य के आश्रम में शिक्षा व युद्ध विद्या प्राप्त की है। महर्षि ने मुझे विमानादि उड़ाने का प्रशिक्षण देवताओं से दिलवाया था। उनसे वार्तालाप करते करते मुझे शुद्ध देव-भाषा आ गई।

मैं अपने राजा वाली के व्यवहार से रूष्ट हो किष्किन्धा छोड़ वाली के छोटे भाई सुग्रीव जी की सेवा में आ गया हूँ। हमारा विचार वाली के स्थान पर सुग्रीव जी को यहाँ का राजा बनाने का है। उसके लिए हम सेना तैयार करने की सोच रहे हैं, परन्तु सेनाओं के युद्ध से गृह-युद्ध आरम्भ हो जाएगा। एक ही जाति के घटक परस्पर एक दूसरे की हत्या करेंगे।"

"इसका विकल्प भी है।" राम ने कहा।

"क्या?" अब तीनों राम, लक्ष्मण और हनुमान गहन वन में एक कन्दरा की ओर चलते हुए वार्ता कर रहे थे।

जब हनुमान ने प्रश्न किया कि गृह-युद्ध का विकल्प क्या है तो राम ने कह दिया, "दोनों भाइयों में द्वन्द्व-युद्ध।"

हनुमान इस सुझाव पर गम्भीर हो गया। उसने केवल इतना कहा, "मैं आपको सुग्रीव जी से भेंट कराने के लिए ले चल रहा हूँ। यह सुझाव आप स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उन्हें ही दें तो ठीक होगा।"

एक कन्दरा के द्वार पर एक ओजस्वी युवक तीन अन्य साथियों के साथ बैठा था। हनुमान को वनवासियों के वेश में दो ओजस्वी व्यक्तियों को लेकर आते देख सुग्रीव समझ गया। उसे शवरी का कथन स्मरण आ गया कि श्रीराम अपनी पत्नी की खोज में अपने भाई के साथ यहाँ आएंगे और उसकी सहायता करेंगे। उसने आगे वढ़ राम के चरण-स्पर्श किये तो राम ने उसे उठाकर गले लगा लिया।

जव आतिथि-सत्कार हो चुका तो सुग्रीव ने उन भूपणों को दिखाया जो विमान पर अपहरण की जाती सीता ने इनकी ओर फेंके थे। राम ने सीता के भूपण पहचाने तो सुग्रीव ने कहा, "इस क्षेत्र में रावण के अतिरिक्त अन्य किसी के पास ऐसा विमान नहीं है। अत: इन भूपणों वाली स्त्री का अपहरण करने वाला रावण ही है।

"विचारणीय वात यह है कि वह उसे लंका में ले गया है अथवा उसने इसी क्षेत्र में कहीं छुपाकर रखा है। यदि उसने कहीं इधर ही रखा है तो सीताजी को छुड़ाना अधिक कठिन नहीं होगा, यदि वह लंका में दुर्ग के भीतर पहुँच गयी हैं तो फिर लंका विजय करनी पड़ेगी और लंका विजय के लिए एक राज्य की शक्ति ही चाहिये। उस अवस्था में आपको किसी राज्य से गठवन्धन करना होगा।"

इतना कह सुग्रीव ने अपनी समस्या का वर्णन कर दिया। सुग्रीव ने वताया, "किप्किन्धा राज्य पूर्ण पूर्व दक्षिण पठार में फैला हुआ था। परन्तु वाली ने सुखपूर्वक राज्य करने के लिए पठार के पश्चिमी समुद्र-तट के साथ एक सौ योजन चौड़ी पट्टी रावण को देकर उससे संधि कर ली है। रावण ने इसके प्रतिकार में किप्किन्धा राज्य को लंका निर्मित भोग विलास सामग्री व शस्त्रास्त्र प्रचुर मात्रा में देने का वचन दिया था।

"सेनिकों का आचरण इस भोग विलास सामग्री के कारण अत्यन्त भ्रप्ट होता जा रहा है। इस कारण कुछ वर्प हुए प्रजा में विद्रोह उत्पन्न हुआ था। इसका कारण सेना का अत्याचार है। वह विद्रोह उग्र हो गया। प्रजा और सेना में छुटपुट झड़पें आरम्भ हो गई। मैं भाई वाली को समझाता था कि सेना में अनुशासन रखे इस कारण वाली ने समझा कि प्रजा में उत्पन्न उपद्रव में मेरा हाथ है। अत: मुझे प्रासाद में वन्दी वना दिया गया और मेरी पत्नी तारा को उसने अपने रनिवास में रख लिया।

"मैं तो प्रासाद से भागने में सफल हो गया हूँ, परन्तु तारा को उसकी भार्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रूप में वहीं रहना पड़ रहा है। कई मित्रों द्वारा उसके करुण सन्देश मुझे मिलते रहते हैं। मुझे अपनी मृत्यू का भय नहीं है परन्तु चाहता हूँ कि वाली के हाथों मरने के पूर्व अपनी पत्नी को एक बार स्वतंत्र अवश्य करवा लूँ।

"मेरे ये साथी कह रहे हैं कि मुझे प्रजा में विद्रोह का नेतृत्व करना चाहिये और स्वयं राजा होने की घोषणा कर देनी चाहिये। मैं यह जानता हूँ कि सामान्य भले नागरिक मेरे शासन को पसन्द करेंगे, परन्तु सैनिकों को जो विशेष सुविधाएँ मिली हुई हैं, उनके लोभ में सैनिक वाली का पक्ष लेंगे।

"तुम उसे द्वन्द्व-युद्ध में क्यों नहीं ललकारते?" राम ने पूछा।

"वह मुझसे अधिक बलशाली है।"

"परन्तु तुम युवा हो, संयमी हो और ईश्वर-भक्त हो। वह तुमको परास्त नहीं कर सकता।"

"आपने उसे देखा नहीं। रावण कितना विशालकाय एवं अत्यन्त बलशाली है, वह भी बल में उससे हीन सिद्ध हुआ था। एक बार वाली जब सागर तट पर उपासना कर रहा था तो रावण उसे बन्दी बनाने के विचार से उसकी ओर आया। वाली ने उसे अपनी बगल में दबा लिया और तब तक दबाए रखा जब तक कि उसकी उपासना समाप्त नहीं हुई। बल के अतिरिक्त वाली सम्मोहन विद्या का ज्ञाता है। उसकी आँखों में ऐसी शक्ति है कि उससे आँख मिलाने वाला स्वयं शक्तिहीन हो जाता है।"

"इस पर भी मैं समझता हूँ कि विजय तुम्हारी होगी।"

सुग्रीव इससे प्रोत्साहित प्रतीत होता था। यद्यपि वह अपनी दुर्बलता का अनुमान लगाकर डरता था।

वाली की पूर्ण कथा राम ने वन में ऋषियों से सुनी थी अत: उनके मन में एक संकल्प बन रहा था। सुग्रीव को उत्साहित करते हुए राम ने कहा, "देखो भाई! मैं यही कह सकता हूँ कि निर्बल के बल राम।"

"अर्थात् आप अपना बल मुझे देंगे?"

"हाँ!" राम ने मुस्कराते हुए कहा।

"यह सम्भव है क्या?" सुग्रीव ने संशय व्यक्त करते हुए पूछा।

"दृढ़ संकल्प हो तो कुछ भी असम्भव नहीं।" राम का विचार था कि एक से अधिक पत्नियाँ रखने वाला अवश्य दुर्बल सिद्ध होगा। उसने सुग्रीव को उत्साहित किया और सुग्रीव अपने साथियों के साथ किष्किन्धा को चल पड़ा। राम और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मण भी उसके साथ थे।

सुग्रीव के साथी जय-घोप करते हुए किष्किन्धा में पहुँचे तो सहस्त्रों की भीड़ एकत्रित हो गई। सुग्रीव ने वाली के प्रासाद के सम्मुख खड़े हो भाई को ललकारा।

वाली के सेवक ने सुग्रीव को कहा भी कि वाली उससे अधिक वलवान है और मच्छर की भाँति उसे मसल डालेगा, परन्तु सुग्रीव ने कह दिया, चूँकि वह अपनी पत्नी की रक्षा नहीं कर सका है, इस कारण लांछनयुक्त जीवन से वह मर जाना अच्छा समझता है।"

वाली मल्ल-युद्ध के लिए तैयार हो निकल आया। वह विचार करने लगा था कि इस काँटे को सदा के लिए निकाल दे तो ठीक ही है।

सुग्रीव के मन में विश्वास हो चुका था कि वह धर्म का पक्ष ले रहा है। इस विश्वास से वह अपने में अपूर्व वल का संचार अनुभव करता था। प्रजा, जो दोनों भाइयों में युद्ध देखने एकत्रित हो गयी थी, मन में सुग्रीव की विजय की कामना करती थी, परन्तु मौन थी, क्योंकि सुग्रीव की विजय में संदेह था। वे वाली के क्रोध से भी डरते थे।

दोनों भाइयों में युद्ध हुआ। यद्यपि सुग्रीव ने आशातीत शौर्य और वल का प्रदर्शन किया, परन्तु युद्ध में वाली की असीम शक्ति के आगे वह पछाड़ खा गया। वाली ने उसे पूरे वल से पाँव की ठोकर मारी और सुग्रीव को मारने लपका। सुग्रीव भूमि से उठा और दूर खड़े राम की ओर भाग निकला। उसे भागता देख वाली अपनी विजय की घोपणा करने लगा।

सुग्रीव श्री राम के पास जा कर दीन स्वर में वोला "प्रभू! निर्वल की सहायता के लिए राम का वल नहीं आया।"

श्री राम ने उसे प्रेरणा देते हुए कहा कहा, "देखो सुग्रीव! तुम्हारा वड़ा भाई हाँफ रहा है। उसका वल क्षीण हो रहा है और तुम अभी भी स्वस्थ हो। घवराओ नहीं। एक वार पुन: ललकारो। तुम दोनों भाइयों की रूप-राशि एक समान है। राम पहचान नहीं सका कि वह अपना वल किसको दे।"

सुग्रीव राम की वात सुन उनका मुख देखता रह गया। राम ने अपने गले की पुष्प-माला उतार सुग्रीव के गले में डालते हुए कहा, "तुम इसे पहन कर युद्ध करो और अव राम तुम दोनों में तुमको पहचान सकेगा और वल तुममें डाल देगा।

सुग्रीव उत्साहित हो लौट चुके वाली के निवास के वाहर जा कर उसे पुन: ललकारने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली क्रोधित हो अपने निवास से वाहर आकर सुग्रीव की ओर लपका। दोनों अपने दाँव लगाने लगे। अचानक सुग्रीव फिसला तो वाली ने सुग्रीव को उठा लिया। जैसे ही वह सुग्रीव को भूमि पर पटकने वाला था कि राम ने अपना धनुप कंधे से उतारा और वाण चढ़ा, वाली के हृदय-स्थल को लक्ष्य वना, छोड़ दिया।

वाण ठीक स्थान पर लगा और वाली मरणासन्न हो भूमि पर गिर पड़ा। वाली के भूमि पर गिरते ही सुग्रीव ने हर्प से घोप कर दिया, "भगवान् राम की जय हो।"

खर, दूपण और उनके चौदह सहस्त्र राक्षसों पर राम और लक्ष्मण की विजय का समाचार विख्यात हो चुका था। अत: राम का नाम सुनते ही सैनिक घवराये और वहाँ से भाग निकले। सेना से त्रसित प्रजा भी सुग्रीव के साथ श्री राम की जय का घोप करने लगी। राम ने उसी समय केशर ले, सुग्रीव को तिलक देते हुए किप्किन्धा का राजा घोपित कर दिया।

वाली ने अपने अनुचर को भेज, राम को वुला लिया। राम मर रहे प्राणी की अन्तिम इच्छा पूर्ण करने के लिए उसके समीप जा खड़ा हुआ।

वाली ने पूछा, "तुम कौन हो?"

"मैं अयोध्या नरेश महाराज दशरथ का पुत्र राम हूँ।"

"तुम यहाँ किसलिए आये हो?"

"आया तो था रावण द्वारा अपनी अपहृत पत्नी को ढूँढ़ने, परन्तु यहाँ मैं तुम्हारे द्वारा अन्याय और अत्याचार होते देख, तुम्हारे भाई की सहायता के लिए आया हूँ।"

"तुम मूर्ख हो! यदि तुम अपनी भार्या को छुड़वाने के लिए मुझे कहते तो मैं रावण को उसे मुक्त करने के लिए विवश कर देता।"

"परन्तु भले मनुष्य! जव तुम स्वयं अपने भाई की पत्नी का अपहरण किये हुए हो तो कैसे मैं यह आशा कर सकता था कि तुम मेरी अपहृत पत्नी का उद्धार करना चाहोगे?"

वाली ने कहा, "तुम धर्मात्मा वने फिरते हो। भला यह कहाँ का धर्म है कि दो व्यक्तियों में हो रहे द्वन्द्व-युद्ध में तुम हस्तक्षेप करो और फिर छुपकर एक की हत्या कर दो?"

राम ने वाली के लांछनों का समाधान करने के लिए कहा, "वाली! धर्म की शिक्षा वह दे सकता है जो धर्म का पालन करता हो। अभिप्राय यह कि अधर्माचरण करने वाले को दण्ड देना ही धर्म होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम राजा होते हुए भी अपने भाई की पत्नी को वलपूर्वक अपनी पत्नी वनाकर रखे हुए थे। राजा धर्म-व्यवस्था रखने के लिए होता है। यदि वह अधर्माचरण करने लगे तो महापापी होता है। सो तुम महापापी थे। तुम्हें दण्ड देना आवश्यक था।"

"मुझे विश्वास है," राम ने आगे कहा, "कि मैंने किसी प्रकार का अधर्म नहीं किया। तुम दोनों में युद्ध समान साधनों से नहीं था। किसी कारण से तुम्हारे शस्त्रास्त्र सुग्रीव के शस्त्रास्त्रों से श्रेष्ठ थे। मैंने तो उसके हीन शस्त्रास्त्रों की पूर्ति ही की है।

"देखो वाली! यह शरीर और इन्द्रियाँ साधन ही हैं। भाग्य वश सुग्रीव तुम जैसा सुदृढ़ शरीर भी नहीं रखता। मैंने उसकी इस न्यूनता को ही पूरा किया है।"

"परन्तु यह वलवान और श्रेष्ठ शरीर रखना क्या इस वात का सूचक नहीं कि मुझे यहाँ का राजा होना चाहिए?"

"तुम्हारी वात का तात्पर्य यह हुआ कि जिस प्रदेश में एक भी वलशाली राक्षस रहने लगे उसे वहाँ का राजा घोषित कर देना चाहिए। नहीं वाली यह सोच दूपित है। राजा का राज्य न्याय, दया-भाव और धर्म का सूचक होना चाहिए। साधन और शक्ति तो उन न्यायादि धर्मों के पालन में सहायता देने के लिए हैं। तुम अपने वलवान शरीर से अन्याययुक्त राज्य कर रहे थे।"

वाली निरुत्तर हो गया और अपने पाप को स्मरण करता हुआ देह त्याग कर गया।

: 33 :

सुग्रीव किष्किन्धा-नरेश अभिषिक्त हुआ। वाली का लड़का अंगद सुग्रीव का महामन्त्री और युवराज नियुक्त हुआ। हनुमान सेनाध्यक्ष वनाया गया और सुग्रीव का कार्य चलने लगा।

राज्याभिषेक के उपरान्त प्रथम कार्य यह किया गया कि दक्षिण पठार के पूर्ण क्षेत्र में गुप्तचर भेजे गये जिससे पता चले कि रावण ने सीता को कहाँ छुपा रखा है। समुद्र के इस पार जिधर आर्यवर्त था, भली प्रकार देख लिया गया। सीता के होने का समाचार नहीं मिला तो फिर किसी को लंका में भेजने का कार्यक्रम वना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन दिनों जटायु का भाई सम्पाति अपने भाई की खोज में वहाँ आया हुआ था। वह भी पक्षियों की भाँति आकाशचारी था। वह भी जटायु की भाँति 'विसर्पक' यान को उड़ाता था। वह सीता की खोज में गये हनुमान एवं उसके साथियों को मिला। हनुमान ने उसे बताया कि उसके भाई को रावण ने मारा है और अनुमान है कि सीता जी को लंका में वन्दी बनाया गया है। हनुमान ने सागर पार जाकर सीता जी को ढूंढने का अपना निश्चय भी बताया। सम्पाति को अपने भाई की हत्या करने वाले रावण पर क्रोध आ गया।

उसने हनुमान से पूछा "क्या तुम विमान उड़ाना जानते हो?"

"हाँ मैंने शिक्षा प्राप्त करते हुए देवलोक में यह सीखा था।"

"ठीक है तुम मेरा विमान लो और इसके द्वारा एक उड़ान में सागर लाँघ जाओ।"

उसी सायंकाता विसर्पक विमान द्वारा हनुमान समुद्र पार कर लंका में जा पहुँचा। विमान को एक अन्धेरे निर्जन स्थान पर घने वृक्षों में छुपा कर लंका पुरी में गुप्त रूप से प्रवेश कर गया। शीघ्र ही लंका में हनुमान ने एक शोकमग्न महिला को स्वर्ण प्रासाद के पीछे बनी अशोक नामक वृक्षों की वाटिका में घने वृक्षों के नीचे बैठे देखा।

श्रीराम द्वारा सीता का वर्णन जिस प्रकार किया गया था, हनुमान उससे तुरन्त उस महिला को पहचान गया कि यह महिला सीता के अतिरिक्त कोई नहीं हो सकती। परन्तु हनुमान सीताजी से मिलने से पहले कोई निश्चित प्रमाण चाहता था। अत: वह सायंकाल के गहराते अन्धकार में छुपकर उस घने वृक्ष पर चढ़ गया और उसके पत्तों मे छिपकर बैठ गया जिसके नीचे सीताजी समाधिस्थ बैठी थीं।

अचानक रावण, जिसे हनुमान पहचानता था, सीता से मिलने आया और हनुमान को दोनों में हुए सम्वाद को सुनने का अवसर मिला।

रावण के साथ कितनी ही दासीयाँ थीं। उसके मन में आया कि इसी समय रावण पर कूद पड़े और उसका गला घोंट कर उसको यम-द्वार पर पहुँचा दे, परन्तु जिस कार्य से वह आया था, वह रावण की मृत्यु से सम्भव नहीं था। रावण लंका का राजा अवश्य था, परन्तु लंका का राज्य अन्य सहस्त्रों राक्षसों के प्रवन्ध से चलता था। उन सभी के रहते सीता जी को लेकर भाग निकलना सम्भव नहीं था। अत: अपना क्रोध मन-ही-मन में पी, विवश हनुमान, रावण व सीता जी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हो रहे सम्वाद को सुनने लगा।

रावण कह रहा था, "तुम इस सुन्दर देश की इस सुन्दर नगरी में इस अति उत्तम वाटिका में 'अशोक' वृक्ष के नीचे बैठी 'शोक' मनाकर 'श्अशोक वाटिका' और अपना अनादर कर रही हो। इन सबके स्वामी देव-लोक, यक्ष-लोक, गन्धर्व-लोक, यहाँ तक कि यम और वरूण-लोक भी विजय करने वाले रावण का तुम्हें तिरस्कार नहीं करना चाहिए। देवताओं की कन्यायें मुझ पर बलिहारी जाती हैं। एक तुम हो जिसकी पिछले कई मास से मैं अनुनय-विनय कर रहा हूँ और तुम मानती ही नहीं।

"क्या रखा है उस मूर्ख वनवासी राम में जो अपनी सौतेली माता के मोह में फँसे वूढ़े पिता के अन्याय-युक्त वचन पर राज-पाट छोड़ वन को चला आया है।"

"देखो सीते! यदि मैं चाहूँ तो तुम्हें वलपूर्वक अपनी पत्नी बना सकता हूँ।"

सीता ने आँसू वहाते हुए कहा, "तुम मेरी ओर से अपने मन को हटा लो। जैसे पापाचारी सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता, उसी प्रकार तुम मेरी चाहत के योग्य भी नहीं हो। मैं एक श्रेप्ठ आर्य-कुल की कन्या हूँ और एक अति श्रेप्ठ आर्य -परिवार की पतोहू हूँ, और तुम एक अपहरणकर्ता।

"मेरे पति को तुम मूर्ख कहते हो, परन्तु तुममें साहस नहीं कि तुम उनके सामने अपने वल और वैभव की कीर्ति वखान कर सको। तुमने चोरी-चोरी, छलना से, मेरा अपहरण किया है। मुझे विश्वास है, जिस समय उन्हें पता चला कि तुमने मुझे यहाँ छुपा रखा है, वह यहाँ आ पहुँचेंगे और तुम और तुम्हारी सेना सीधे उसी यम के द्वार को जाएगी जिस पर विजय का दम्भ तुम भर रहे हो।

"यदि तुमने मुझ पर वलात्कार करने का यत्न किया तो मेरी मृत देह को ही पा सकोगे। यह जीवात्मा तो श्रीराम के जीवात्मा से संयुक्त हो चुका है। अव इस मन और तन का किसी अन्य से सम्पर्क नहीं वन सकता।"

'देखो रावण! यदि अव भी तुम अपना कल्याण चाहते हो तो मुझे उनके पास पहुँचा अपनी घृप्टता के लिए उनसे क्षमा माँगो। वह शरणागत-वत्सल हैं, शरण में आये की सदा रक्षा करते हैं। वह तुम्हारा अपराध क्षमा कर देंगे। यह तुम्हें तुरन्त करना चहिए। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे उनकी शरण में जाने से पूर्व ही वह यहाँ आ पहुँचे और तुम्हें व तुम्हारे राक्षसों सहित इस लंका को जला डालें।"

इस प्रकार तिरस्कार और घृणा की भावना से परिपूर्ण शव्दों को सुन रावण का क्रोध वढ़ने लगा। वह इस प्रकार की सम्मति और डाँट-डपट की वात सुनने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अभ्यस्त नहीं था। वह क्रोध से काँपता हुआ बोला, "ऐ स्त्री! तुम निर्धन, अनाथ एवं मूर्ख मनुष्य का अनुसरण कर रही हो और ऐसी स्त्री का जो परिणाम होता है, वह तुम्हारा भी होगा। तुम मेरे भोग की सामग्री भी बनोगी और यहाँ की नीच दासियों की भाँति रखी जाओगी।"

"त्रिजटा!" रावण ने सीता पर नियुक्त दासियों की मुखिया को कहा, "इस स्त्री के हाथ-पाँव बाँधकर मेरे प्रासाद में पहुँचा दो। मैं आज इसका अभिमान चूर-चूर करूँगा। देखूंगा कि इसका कंगला, वनों में भटकने वाला पति इसकी क्या सहायता करता है।"

त्रिजटा अभी रावण का मुख ही देख रही थी कि पटरानी मन्दोदरी जो, रावण के साथ अशोक-वाटिका में आयी थी और जिसे रावण अन्य स्त्रियों के साथ कुछ अन्तर पर छोड़ आया था, आगे बढ़ आयी और रावण से बोली, "नरश्रेष्ठ! क्रोध में कुछ नहीं करना चाहिए। इसे कुछ समय और दीजिए, जिससे इसको अपनी स्थिति का ठीक-ठीक ज्ञान हो सके। जब यह आपके वैभव और शक्ति को समझ जायेगी तो उस समय यह स्वत: प्रसन्नतापूर्वक आपकी पत्नी बनना स्वीकार कर लेगी। यह प्राय: स्त्री-स्वभाव है।"

रावण क्रोध से काँप रहा था। मन्दोदरी अन्य साथ आयी स्त्रियों की सहायता से रावण को बाँह से पकड़ अशोक-वाटिका से बाहर ले गई। जाते हुए रावण कह गया, "मैं तुम्हें और एक मास का समय देता हूँ। यदि तब भी तुम अपने हठ पर दृढ़ रहीं तो तुम्हारा स्थान मेरी निष्कृट दासियों में होगा।"

सीता अपनी स्थिति पर अत्यन्त निराश थी और अग्नि प्रज्वलित कर अपने को उसमें भस्म कर देने का विचार करने लगी थी।

त्रिजटा उन सेविकाओं पर मुखिया नियुक्त थी जो सीता की निगरानी पर रखी गयी थीं। रावण के चले जाने पर सीता ने उसे कहा, "हे त्रिजटा! यहाँ अग्नि प्रदीप्त करो। मैं अब इस शरीर को छोड़ देना चाहती हूँ।"

"किसलिये देवी?" त्रिजटा ने पूछा।

"इस निकृष्ट असुर के मेरे तन पर बलात्कार करने से पूर्व ही मैं इस देह को छोड़ देना चाहती हूँ। यह मुझको असह्य है कि श्री राम को अर्पित इस तन को कोई अन्य पुरुष छू भी जाए।"

त्रिजटा मन्दोदरी की ही सेविका थी और उस पर धर्मात्मा विभीषण का प्रभाव था वह सीता का निर्णय सुन हाथ जोड़ बोली, "देवी! निराश होने में कारण नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। परमात्मा पर विश्वास रखो, उसकी शक्तियाँ काम करेंगी और उनका विरोध कोई देव, दानव या मनुष्य नहीं कर सकता। रावण कितना भी बलशाली क्यों न हो, वह परमात्मा की इच्छा के विरोध अपनी शक्ति से नहीं कर सकेगा।

"भगवती! तुम्हारा उद्धार समीप ही प्रतीत होता है। हमारे राजा का कुत्सित विचार सफल नहीं हो सकेगा। मैं जानती हूँ आप नहीं मानतीं। इसी से कहती हूँ कि देवी को धैर्य धारण कर अपने संकल्प पर दृढ़ रहना चाहिए। जैसा मैंने सुना है कि श्री राम परमात्मा की आभा से सुशोभित हैं, उन पर विश्वास रखें। मुक्ति का समय अब निकट ही है।"

सीता को इस सम्वाद से सुख प्रतीत हुआ। त्रिजटा पुनः बोली, "देवी! परमात्मा जो सब स्थान पर व्यापक है, का आश्रय लेकर अब विश्राम करो।"

त्रिजटा ने दासियों को आज्ञा दी, "दूर चली जाओ। सीता जी अब सोएंगी।" इतना कह वह भी सीता को वहाँ छोड़ वाटिका से बाहर चली गयी।

: 34 :

हनुमान वृक्ष पर बैठा यह सब देख रहा था। सीता सोयी नहीं। वह त्रिजटा के कथन पर साहस पकड़ परमात्मा का चिन्तन करने लगी। एकाएक उसके मुख से उसके अन्तर्मन की हूक निकल गयी। वह कह उठी, "हे राम! बहुत देर हो गयी! शीघ्र आओ। अब और सहन नहीं किया जा सकता।"

सीता जी के होने का प्रमाण हनुमान को मिल चुका था। हनुमान को स्मरण आ गया कि श्री राम ने सीता जी की खोज के लिए चलते समय उसे अपनी एक अंगूठी दी थी जिससे अवसर पड़ने पर वह राम का दूत होने का प्रमाण दे सके। उसने वह अंगूठी सीता जी की झोली में फेंक दी।

सीता का ध्यान भंग हुआ। अपनी झोली में कुछ गिरते देखा तो उसने उसे उठा लिया। वह अंगूठी को पहचान गयी और विस्मय करने लगी कि यह कहाँ से आ गयी है। उसने ऊपर वृक्ष की ओर देखा तो हनुमान ने अपना परिचय देना उचित समझ बहुत धीमी आवाज में कहा, "माता! मैं श्रीराम का दूत हूँ।"

"उनका दूत? यहाँ! समक्ष आओ। छलना तो नहीं खेल रहे? देखो, जो भी तुम हो! मैं एक निस्सहाय अबला हूँ। मुझसे झूठ और छलना खेलना उचित नहीं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हनुमान वृक्ष से नीचे उतर आया। आकर उसने सीता के चरणों के समीप की भूमि को छूकर और अपने माथे से लगाकर कहा, "माता! मैंने कभी झूठ नहीं बोला। परमात्मा की सौगन्ध-पूर्वक यह कहता हूँ कि मैं राम जी का दूत हूँ। उन्होंने इस नगरी पर आक्रमण करने के लिए एक विशाल सेना तैयार कर ली है। वह जानना चाहते थे कि आप किस स्थान पर हैं। यदि आप कहीं लंका से बाहर हैं तो वहीं पर आक्रमण किया जाये। यहाँ के नागरिकों को व्यर्थ का कष्ट न दिया जाए।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इसी अर्थ हम बहुत से लोग आपको ढूंढने निकले थे और मेरी नियुक्ति लंका में आपको खोजने की थी। श्रीराम ने चलते समय मुझे यह अंगूठी दी थी जिससे आपको विश्वास दिला सकूँ कि मैं उनका दूत हूँ।

"वैसे मैं अभी अकेला ही आपको यहाँ से बाहर निकालने का यत्न कर सकता हूँ, परन्तु इन लाखों राक्षसों से पार पाना अति दुस्तर कार्य होगा और मैं नहीं चाहता कि आपके यहाँ होने की सूचना में कोई विलम्ब हो। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपके यहाँ होने की सूचना पर श्रीराम दल-बल सहित अति शीघ्र आयेंगे और आपको मुक्त करवायेंगे।"

"ठीक है। मैं तो प्राण त्यागने का विचार कर रही थी। अब पुनः आशान्वित हो जीने की लालसा करने लगी हूँ।"

सीता ने राम की अँगूठी अपने पास रख ली और अपनी एक चूड़ी जो तपस्विनी अनुसूया ने उसे दी थी, राम को पहचान के लिए दे दी। श्रीराम उस चूड़ी को पहचानते थे।

सीता ने चूड़ी देते हुए कहा, "अब तुम यहाँ से जाओ। यहाँ अधिक काल तक तुम्हारा रहना भय से रहित नहीं। यदि तुम्हारा कुछ अनिष्ट हो गया तो उस महान् कार्य में, जिसके निमित्त तुम यहाँ आये हो, विघ्न पड़ेगा, अब तुम जाओ।"

हनुमान ने पुनः चरणों के समीप की भूमि स्पर्श की और छलाँग लगा वाटिका की प्राचीर पर जा पहुँचा। उसी मार्ग से वह आया था। अब कार्य की सफलता से उत्साहित हो वह भूख अनुभव करने लगा। प्राचीर पर पहुँचते ही उसकी दृष्टि फलों के उद्यान की ओर चली गयी। फल देखकर हनुमान सब कुछ भूल गया।

वह तुरन्त उद्यान में कूद पड़ा और जल्दी-जल्दी भिन्न-भिन्न प्रकार के फल तोड़-तोड़ कर खाने लगा। जो फल कच्चे तथा खट्टे होते, वह उनको चखकर फेंक देता और अन्य फल तोड़ लेता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इस समय उद्यान के एक प्रहरी की दृष्टि उस पर पड़ गयी और उसने हल्ला
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कर दिया। परिणामस्वरूप उस वाटिका के संरक्षक सैनिक उसे पकड़ने को लपक पड़े। हनुमान ने जब अपने को घिरा हुआ पाया तो एक राक्षस की गदा छीन घुमाने लगा और अकेला ही बीसीयों प्रहरियों से लड़ने लगा।

इससे तो और अधिक हल्ला हुआ। अब वाटिका के बाहर के सैनिक भी नवागन्तुक को पकड़ने का यत्न करने लगे। हनुमान ने अकेले ही अधिकत्तर सैनिक मार डाले, शेष को घायल कर डाला। इस पर तो नगर का संरक्षक मेघनाथ स्वयं इसको पकड़ने के लिए कई सौ सैनिक लेकर घटनास्थल पर आ पहुँचा।

अब हनुमान पराजित हो पकड़ा गया। इस समय तक दिन निकल आया था। उसे रावण के सम्मुख उपस्थित किया गया।

वाटिका के प्रहरी ने आरोप लगाया, "यह व्यक्ति इन्सान के रूप में कोई वानर है। रात भर इसने वाटिका के वृक्षों पर वानरों के समान उछल कूद मचाई और फल तोड़-तोड़कर फेंक दिए। जब इसे रोकने के लिए प्रहरी गये तो इसने उनमें से कइयों को मार डाला और अनेक को घायल कर दिया है।

"इस पर सूचना नगर-संरक्षक राजकुमार के पास भेजी गयी। उनके आने पर यह पकड़ा जा सका है।"

"तुम कौन हो?" रावण इस व्यक्ति के इतने शौर्य की बात सुन अति प्रभावित हुआ था। वह हनुमान के अपराध को नहीं देख रहा था, वह उसके बलिष्ठ शरीर व उसके शौर्य की महिमा पर चिन्तन कर रहा था।

हनुमान ने अपना परिचय दिया और कहा, "महारानी सीता का समाचार लेने आया था और उन्हें यह कहने आया था कि अब उनका उद्धार निकट है। श्रीराम का कार्य सम्पन्न कर वापस जा रहा था कि मुझे भूख लगी थी। वाटिका में फल लगे थे। मैंने तोड़कर खाये। यह कोई अपराध नहीं है। आपके सैनिकों ने मुझे मारना चाहा था। मैं उनसे अधिक बल का स्वामी था, इस कारण मैंने उन्हें मार डाला।"

"तो तुम हमारी सेवा स्वीकार कर लो। हम तुम्हारे शौर्य के कार्य से अति प्रसन्न हैं।"

"परन्तु राजन! मैं तो श्रीराम का सेवक हूँ और वह आपको शत्रु मानते हैं। इस कारण आप मेरे भी शत्रु हैं। भला शत्रु की सेवा कैसे कर सकता हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तब तो तुम्हें दण्ड देना पड़ेगा। विचार कर लो। हमारा दण्ड अति भयंकर होगा।"

"महाराज! यह भी मैं जानता हूँ। मैं आपसे दया की याचना नहीं कर रहा। परन्तु समझ लीजिये कि मैं दूत हूँ और दूत को दण्ड नहीं देते, सम्मान देते हैं। आपका मुझे किसी प्रकार का दण्ड देना आप पर भी भारी हो सकता है।

"राक्षसराज! यदि अपना भला चाहते हो तो महारानी सीता को श्रीराम के पास वापस भेज दो। साथ ही श्रीराम से क्षमा याचना करो, भविष्य के लिए अपना आचरण सुधारने का वचन दो जिससे कि तुमको जीवन-दान मिल सके।"

रावण को क्रोध आ गया। उसने कह दिया "तब तुम्हें दण्ड देना ही होगा। हम आज्ञा देते हैं कि इस क्षुद्र जीव को आग में जीवित भस्म कर दो।"

रावण की आज्ञा हुई तो हनुमान को जला डालने की तैयारी होने लगी। उसके शरीर पर तेल से भिगोये कपड़े बाँधे जाने लगे।

एकाएक हनुमान ने योग से परिपक्व अपने शरीर को ऐसा विस्तार दिया कि बन्धन जिससे उसे बाँधा हुआ था, टूट गये और वह मुक्त हो गया। जब तक कोई यह समझे कि क्या हुआ, मुक्त होते ही वह उचक कर पहले भवन की प्राचीर पर तदुपरान्त छत पर चढ़ कर सैनिकों की पहुँच से दूर हो गया। जो सामान उसे जला देने के लिए एकत्रित किया गया था, उसने उसी से आसपास के भवनों को आग लगानी आरम्भ कर दी।

हनुमान के शौर्य और पराक्रम को तो राक्षस पहले ही देख चुके थे। अत: उसे बन्धन मुक्त हुआ देख, सभी सैनिक भाग खड़े हुए और हनुमान को भवनों और नगर के मुख्य भागों को आग लगाने का अवसर मिल गया। देखते ही देखते स्थान-स्थान पर लंकापुरी धू-धू कर जलने लगी। लोग और सैनिक आग बुझाने में लग गये और हनुमान सागर किनारे पर पहुँच कर, छुपाए विसर्पक यान पर चढ़ समुद्र पार आर्यवर्त की मुख्य भूमि की ओर उड़ान भरने लगा।

हनुमान के साथी समुद्र के इस पार हनुमान की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब हनुमान का यान इधर आता दिखायी दिया तो वे उत्सुकता से विमान के उतरने की प्रतीक्षा करने लगे। हनुमान ने यान से उतर कर लंका का समाचार दिया तो सब अति प्रसन्न हो कूद-कूद कर हर्ष प्रकट करते हुए हनुमान की जय-जय-कार करते हुए किष्किन्धा की ओर चल पड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हनुमान को लंका जाने और वहाँ से लौटने में दो मास के लगभग लग गये थे। इस काल में सुग्रीव ने किष्किन्धा के नागरिकों व अन्य आस पास के वनवासीयों की विशाल सेना तैयार कर ली थी।

जब हनुमान लौट कर आया तो वह भी सुग्रीव के आह्वान पर सेना का जमाव देख चकित रह गया। जब किष्किन्धा में इस समाचार ने विस्तार पाया कि राजा सुग्रीव राक्षसों पर आक्रमण कर रहा है तो राक्षसों के विरुद्ध पूर्ण देश में उत्साह और उत्तेजना आ गयी! युवक स्वत: सेना में प्रवेश के लिए किष्किन्धा में पहुँचने लगे थे।

हनुमान ने लंका में जो कुछ देखा था और जो कुछ उसने किया था, सब श्रीराम को कह सुनाया। जहाँ सीता की दु:खी अवस्था का वृत्तान्त सुन राम की आँखो में अश्रु बहने लगे, वहाँ हनुमान की वीरता की कहानी सुन उनके भुजदण्ड फड़कने लगे।

लंका आक्रमण में सबसे बड़ी बाधा समुद्र की थी। इसी कारण ही रावण और लंकावासियों का मस्तिष्क आसमान पर चढ़ा हुआ था। हनुमान का लंका में प्रवेश पा जाना और फिर लंका को फूँककर सुरक्षापूर्वक चला आना लंका-निवासियों और रावण के सैनिकों के मन में चिन्ता उत्पन्न करने वाला तो था, परन्तु रावण और उसके सैनिक यह सोच कर मन को सन्तोष दे लेते थे कि एक-आध व्यक्ति का चोर की भाँति आना और वहाँ कुछ हानि पहुँचाकर चला जाना यह सिद्ध नहीं करता कि लक्ष-लक्ष राक्षस सैनिकों से युद्ध करने के लिए इतने ही सैनिक लंका में आ सकेंगे।

परन्तु रावण के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा जब एकाएक पता चला कि आर्यावर्त का दक्षिणी कोण लंका से सेतु द्वारा जोड़ दिया गया है और एक लक्ष के लगभग सैनिक लंका में आ पहुँचे हैं। समुद्र तट के संरक्षको की जानकारी के बिना श्रीराम की सेना सागर पार आ गयी। यह देख रावण की नींद खुली और तुरन्त एक युद्ध-सभा बुलायी गयी।

सभा में विभीषण, कुम्भकरण, मेघनाथ, प्रहस्त, दुर्मुख, वज्रदंष्ट्र, निकुम्भ, वज्रहनु इत्यादि व रावण के अन्य सभी सम्बन्धी और सेनापति उपस्थित थे।

रावण ने बताया कि इस राम ने धोखे से बाली को मार डाला है और उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे भाई सुग्रीव को राज्य दिलाकर उसे अपना सहायक बना लिया है। अब राम के उकसाने पर सुग्रीव सेना लेकर लंका में घुस आया है। सुना है कि उन्होंने समुद्र पर सेतु बाँध लिया है। अब उनकी सेना और सैनिक-सामग्री लंका-भूमि पर आ रही है।

रावण ने अपने मंत्रियों को बताया कि बिना एक विशाल युद्ध के यह सेना लंका द्वीप के बाहर नहीं की जा सकती।

"तो महाराज!" इन्द्रजीत मेघनाथ ने कह दिया, "मेरा भी प्रण सुन लीजिए। मैं राम और लक्ष्मण को यमद्वार पहुँचाने का वचन देता हूँ।"

अन्त में विभीषण ने कहा, "भैया! एक बात मेरी भी सुन लें। राम अद्वितीय योद्धा और पुरुषोत्तम है। वह अजेय है। आप उसे युद्ध में परास्त नहीं कर सकेंगे।"

"नर्मदा के अर्जुन और किष्किन्धा के बाली को आप पराजित नहीं कर सके। राम, जो उनसे सैकड़ों गुणा अधिक धैर्यवान, बलवान और नीतिवान् है, उसे आप कैसे पराजित कर सकेंगे? इस कारण मेरी सम्मति मानें और सीता को मान-प्रतिष्ठा से वापस कर दें आराम से क्षमा याचना कर लें। मैं समझता हूँ कि इससे आपकी कीर्ति में वृद्धि होगी और व्यर्थ की राक्षस हत्या रुकेगी।

इस कथन पर सभा के सब-के-सब सभासद एकदम बोल उठे, "नहीं! नहीं!! यह अपमानजनक होगा।"

इसका उत्तर इन्द्रजीत ने दिया, "राम इन्द्र से बढ़कर शक्ति और बुद्धि का स्वामी नहीं है। मैंने तो उस इन्द्र को भी बाँधकर पिताजी के सामने उपस्थित कर दिया था। मैं तो उस समय भी ब्रह्मा की बात मानता नहीं और इन्द्र को बन्दीगृह में डाले रखता। मेरी सम्मति यह थी कि ब्रह्मा को भी बन्दी बना लिया जाये और देव-लोक पर अपना राज्य स्थापित कर लिया जाये। परन्तु पिताजी को बूढ़े ब्रह्मा पर दया आ गई और इन्होंने सहज ही सन्धि कर ली।

"मैं अब भी यही सम्मति दूंगा कि इन किष्किन्धा वासियों को मार-मार कर भगा दिया जाये। ये हमसे क्या लड़ेंगे? अपना घर तक बना नहीं सके, वानरों की तरह कन्दराओं और वृक्षों पर बने मचानों पर रहते हैं। इनके द्वारा बनायी सेतु पर अपना अधिकार कर भारत-विजय का आयोजन किया जाये।"

पूर्ण सभा में इन्द्रजीत और रावण की जयघोष हो गयी। परन्तु विभिषण ने लंका के जलने की घटना का स्मरण करा मेघनाथ से पूछा, "और मेघनाथ? उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
समय तुम कहाँ थे जब एक ही किष्किन्धावासी तुम्हारे नियन्त्रण में नहीं आया?"

"मैं वहीं था। परन्तु वह वानर की तरह कूद फांद कर रहा था। आग लगाकर भाग गया और मैं कुछ कर नहीं सका, युद्ध के मैदान में होता तो वताता। अरे वह इन्सान है ही नहीं, वह तो वानर है।"

"हाँ-हाँ वानर है, हाँ- हाँ वह वानर है, राम और सुग्रीव वानरों की सेना लेकर आए हैं।" कहते हुए रावण के सभी सेनानायक हँसने लगे।

"मेरी चेतावनी सुनलो कि तुम्हारे द्वारा घोषित यही तथाकथित वानर लोग लंका को विनष्ट कर सीता को लेकर चले जायेंगे और तुम मुख देखते रह जाओगे।

"और तात्! आप उसके चरण-स्पर्श कर क्षमा-याचना करते फिरेंगे। मुझे अपनी दादी पर सन्देह होने लगा कि उसने किस भीरु से आपको गर्भ में लिया था। आप हमारी संस्कृति के नहीं हैं। लंका का सुख-वैभव आपके योग्य नहीं है।

"तात! क्या आप शाप दे रहे हैं। इससे पहले कि लंकेश आपसे कुछ कहें आप मेरी सुनलें।" मेघनाथ ने आगे कहा, "हमारी विजय के वाद तो आप और आपके परिवार वालों के लिए इस सुन्दर और सुखप्रद भूमि का भोग नहीं रहेगा। यदि कहीं इसके विपरीत स्थिति उत्पन्न हुई और अन्य राक्षस भी आपकी भाँति भीरु तथा दुर्वल सिद्ध हुए तो निश्चय जानो कि राम आपको राज-प्रासाद के सम्मुख सूली पर चढ़ा देगा। आप जैसे भाई-वन्धुओं से द्रोह करने वाले का न इस राज्य सभा में कोई स्थान रहेगा न राम की चण्डाल चौकड़ी में। तव आपकी स्थिति विकट होगी।"

तभी रावण ने भी कहा कि लंका का प्रासाद छोड़ दो अन्यथा तुम्हारा स्थान कारागार में होगा। विभीषण उठा और चुपचाप राज्य-सभा से वाहर चला गया।

: 36 :

ज्यों ही सेना और युद्ध-सामग्री सेतु से इस पार पहुँची, राम ने सुग्रीव और अन्य सेनानायकों की सभा बुला ली। राम का विचार था कि लंका दुर्ग पर आक्रमण की योजना वनायी जाए। यह दुर्ग अजेय समझा जाता था। इस कारण इसे तोड़-फोड़ कर भीतर गये विना सीता का उद्धार सम्भव प्रतीत नहीं होता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ-एक सेनानायकों का विचार था कि बाली-सुग्रीव के युद्ध की भाँति यहाँ भी रावण-राम का द्वन्द्व युद्ध हो जाये।

इस समय सभा में हनुमान सूचना लाया, "महाराज! रावण का भाई विभीषण आपसे भेंट करने के लिए आया है।"

सुग्रीव ने कहा, "यह किसी प्रकार की छलना खेलने आया है।"

हनुमान ने कहा, "जब मैं महारानी सीताजी की खोज में लंका में घूम रहा था तो मुझे विभीषण के प्रासाद को देखने का अवसर मिला था। उसका प्रासाद यज्ञ के सुगन्धित धुएँ से सुवासित हो रहा था और प्रासाद के भीतर एक आगार से वेद-मन्त्रों की ध्वनि आती सुनाई दे रही थी। लंका में लोग इन्हें धर्मात्मा व्यक्ति मानते हैं। इस कारण मेरा अनुमान है कि यह अपने भाई रावण से लड़कर चला आया है।"

राम को हनुमान की सूझ-बूझ पर विश्वास था। इस कारण उसने विभीषण को उसी सभा में बुलवा लिया और परिचय के उपरान्त आने का प्रयोजन पूछा।

विभीषण ने कहा, "मैं चाहता था कि यह भयंकर युद्ध न हो इस युद्ध को टालने का मैंने भरसक यत्न किया है, परन्तु मेरी सम्मति रावण ने कभी नहीं मानी। वहाँ सभा में आपको और मुझे भी जली-कटी सुनाई गईं और राजा सुग्रीव व उनके सेनानायकों को वानर घोषित कर यह निश्चय किया है कि आपसे युद्ध किया जाये। इस कारण मैं लंका का त्याग करके आ गया हूँ।"

"तो आप हमें युद्ध के लिए मना करने आये हैं?"

"नहीं श्रीराम! मैं ईश्वर भक्त हूँ। मैं आस्तिक हूँ। मैं सीताहरण का विरोधी हूँ। अत: मैं युद्ध में न्याय का पक्ष लेने आया हूँ। मैं आपकी शरण में आया हूँ। यह कहा जाता है कि भले लोगों की शरण में रहने से कभी अकल्याण नहीं होता। इस पर भी मैं इस युद्ध को रोकने के लिए एक प्रयास करने के लिए कहूँगा।"

"क्या चाहते हैं आप?"

"वही जो सभी सभ्य लोग करते हैं। लंका पर आक्रमण से पूर्व शान्ति के लिए एक दूत भेजिये। वह आपकी शुभकामना लंका निवासियों के प्रति लेकर जाए और जाकर कहे कि उस शुभ कामना का फल प्राप्त करने के लिए लंकाधिपति सीता को मान सहित यहाँ पहुँचा दे और अपना आचरण सुधारे।"

"तो अभी भी आशा है कि रावण भले लोगों के मार्ग पर आ सकता है?" सुग्रीव का प्रश्न था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महाराज! आशा किंचित् मात्र भी नहीं। इस पर भी इससे आपकी शोभा और कीर्ति अनन्तकाल तक होती रहेगी। नर-संहार से पहले सभ्य लोग उससे बचने का प्रत्एक उपाय करते हैं।

"इसमें मेरा भी स्वार्थ है। मेरे-भाई-बन्धु, सुहृद् वहाँ लंका में हैं। वहाँ भी भले विचार के लोग हैं, यद्यपि वहाँ के राज्यप्रपंच के अधीन उनका स्वर सुनाई नहीं पड़ता, यदि वे लोग बच सकें, तो मुझे प्रसन्नता होगी।"

राम ने कुछ विचार किया और तदनन्तर अपना निर्णय बता दिया। उसने कहा, "भाई विभीषण ठीक कहते हैं। हमें एक शान्ति-दूत रावण की सभा में भेजना चाहिये। उसे अन्तिम अवसर अपने-आपको तथा अपने देशवासियों को बचाने का देना चाहिये। परन्तु कौन उन मानवभक्षियों के सम्मुख जाएगा ?"

इस बार बाली के पुत्र अंगद ने जाना स्वीकार किया।

अंगद जब रावण की सभा में उपस्थित किया गया तो रावण ने उसे अपने मित्र का पुत्र घोषित कर एक उच्चासन पर सुशोभित कर कहा, "तुम बाली के पुत्र हो। बाली मेरा मित्र था। अत: तुम मेरे पुत्र समान हो। तुम उन वनवासियों के जाल में कैसे फँस गए हो? मैंने सुना है कि तुम्हारे पिता को इस वनवासी ने छुपकर बाण द्वारा घायल किया था। पीछे उनकी मृत्यु हो गयी थी। भला तुम ऐसे छली की सेना में क्या कर रहे हो?"

अंगद ने विनम्र भाव में कहा, "आप पिताजी के मित्र हैं। इस कारण ही आपकी सेवा में आया हूँ। पिताजी तो अपने दुष्कर्मों के कारण यौवनावस्था में ही स्वर्ग सिधार गए, आप भी पिताजी के पथ के अनुसरण कर रहे हैं। इस कारण वैसे परिणाम से आपको बचाने के लिए मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

"तात्! मैं आपसे छोटा हूँ परन्तु मेरी बात ध्यान देकर सुनें। जब तक जीवन है आप सदृश लोग सुख-भोग को ही ध्येय समझते हैं। इन्ही सुखों के लिए ही आप अपना जीवन लम्बा करें। सीता माता के लिए अपने जीवन को समय से पूर्व छोड़ना बुद्धिमत्ता की बात नहीं। मुझे भेजा गया है मैं आपको युद्ध के भयंकर परिणामों से बचाने का यत्न करूँ।

"युद्ध में सहस्त्रों युवक मारे जायेंगे। देश में युवकों का अभाव हो जायेगा। मृतकों की पत्नियाँ विधवा हो जायेंगी। उन विधवा स्त्रियों का जीवन नरक तुल्य हो जायेगा। जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ती के लिए वे दूसरे पतियों की खोज में भटकेंगी अथवा व्यभिचार का मार्ग स्वीकार करेंगी। इससे शेष पुरुष-वर्ग भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतन की ओर चल पड़ेगा। इस प्रकार पूर्ण जाति पतन को प्राप्त होगी।"

"तो तुम यह कहने आए हो कि मैं भूमि चाटता हुआ राम की सभा में पहुँच जाऊँ और हाथ जोड़कर नमस्कार करूँ और कहूँ 'मुझे क्षमा करें'।"

"तात् यदि केवल यही तीन अक्षर 'मुझे क्षमा करें' बोलने से आपका जीवन लक्ष्य 'भोग विलास' आपको प्राप्त होता रहे तो क्या हानि है?"

"देखो बालक!" रावण ने स्पष्ट कहा, "मैं ऐसा कुछ भी नहीं करूँगा। तुम जाकर अपने पिता के हत्यारे को कह दो कि यहाँ छलना से काम नहीं चलेगा। यहाँ तो युद्ध होगा उसकी और मेरी सेना के भीतर। राक्षस सेना अपार है। उसका पार पाने के लिए कोई देवता भी सक्षम नहीं। भला पत्नी के लिए विलाप करता वन-वन में भटकने वाला, क्षुद्र वानरों की सेना से वह क्षुद्र जीव क्या युद्ध करेगा? उसे कह दो कि वह जा कर अभी तपस्या करे। वह न राजनीति जानता है और न युद्धनीति।"

अंगद ने विनम्रता के भाव से कहा, "तात्! मैं आपका सन्देश अक्षरक्ष: सुना दूंगा। परन्तु आपके, पिताजी से विशेष स्नेह को स्मरण कर, मैं अपनी ओर से यह दो शब्द कहना चाहता हूँ कि जो भूल पिताजी ने की थी, वही आप न करें।

"उनको यह सूचना मिली थी कि राम महाबली और दिव्यास्त्रों से युक्त हैं। इस कारण राम से शत्रुता न करें और अपने छोटे भाई राजा सुग्रीव को प्रासाद में स्थान दें। तब वह अभी एक लम्बे काल के लिए राज्य भोग सकेंगे। उन्होंने इस बात को नहीं माना और जब वह मरणासन्न भूमि पर पड़े थे तब भी श्रीराम पर दोषारोपण लगाने लगे थे कि उन्होंने धोखे से उस पर बाण छोड़ा है।

"श्रीराम ने उन्हें यही उत्तर दिया था कि एक दुष्ट और चरित्रहीन व्यक्ति को जीने का अधिकार नहीं। जीवन सुख लेना है तो अपने और अपने साथियों के कल्याण को भली-भाँति समझो।

"इस कारण हे तात्! मैं आपको समझाने आया हूँ कि युद्ध में आपकी विजय नहीं होगी। धर्म की कभी पराजय नहीं होती। दुर्जन पीछे अपनी पराजय के बहाने ढूँढ़ा करते हैं और परमात्मा पर दोषारोपण करते हैं।"

"परन्तु दुर्बल की जीत होगी क्या?" रावण ने पूछा।

"तात्! धर्म कभी दुर्बल नहीं होता। कुछ धर्मात्मा मूर्ख होते हैं जो धर्म के विधि-विधान को न समझते हुए अपने को अधर्म के पंजे में निस्सहाय डाल देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तात! धर्म महान् शक्ति है। उसका एक छोटा-सा दर्शन मेरे बड़े भाई समान हनुमान आपको पहले करा गए हैं। आपकी कोटि-कोटि सुभट्टों से भरी नगरी उस एक परमात्मा के भक्त का बाल भी बाँका नहीं कर सकी। सुना है कि आपकी इस सुन्दर नगरी को बहुत हानि पहुँचा गए हैं।"

"वह भगोड़ा युद्ध करने की सामर्थ्य न रखता हुआ पीठ दिखा गया था। जाते-जाते वह वानरों सदृश अपनी कूद फाँद से निर्धनों के झोंपड़ो को आग लगा कर 'सिर पर पाँव रख' भाग गया था। न भागा होता तो मेरे योद्धा उसके हाथ पाँव बाँध कर उसका वध कर देते।"

अंगद ने हँसते हुए कहा, हाँ हम वानरों के हाथ और पाँव ही हमारे हथियार हैं। आपकी सभा को मैं चुनौति देता हूँ। मैं 'सिर पर पाँव रख कर' नहीं भागूंगा। मैं यहाँ सभा के मध्य में खड़ा होता हूँ और आपको आपके इन तथाकथित योद्धाओं का बल दिखाना चाहता हूँ कि यदि आपका कोई योद्धा मेरे इस पाँव को हिलाकर भी दिखादे तो मैं मान जाऊँगा कि आपके योद्धा बड़े सामर्थ्यवान् हैं।"

"क्या कहा? पाँव उठाने की बात? तुम्हें हम एक मक्खी की भाँति उठाकर समुद्र पार फेंक सकते हैं।"

"तात् ऐसे नहीं। आपकी सभा में कोई योद्धा हो तो उसे कहें कि मेरे इस पैर को हिला दे।" इतना कहते-कहते अंगद ने अपने आसन से उठ सभा के मध्य में अपना पाँव जमा दिया।

रावण कुछ देर तक तो मुस्कराता रहा, परन्तु कुछ विचार कर एक सुभट्ट से बोला, "दुर्मुख! इस वानर के बच्चे को उठा कर समुद्र में फेंक दो।"

दुर्मुख उठा और अंगद की टाँग को पकड़ उठाने लगा। जब टाँग नहीं उठा सका तो उसकी कम्र में हाथ डाल उस स्थान से हिलाने का यत्न करने लगा। उसे कुछ ऐसा समझ आया कि अंगद एक दृढ़ लौह-स्तम्भ की भाँति खड़ा है जो हिल नहीं सकता।

दुर्मुख को अपने कार्य में असफल होते देख रावण ने अन्य योद्धाओं से यह कार्य करने को कहा।

एक-एक कर, फिर दो-दो कर, तदनन्तर कई इकट्ठे मिलकर भी जब अंगद के पाँव को हिला नहीं सके तो रावण क्रोध से पागल हो स्वयं अंगद का पाँव को उठाने के लिए उठ खड़ा हुआ। जब रावण झुककर अंगद की टाँग को छूने लगा तो अंगद ने पाँव उठाकर पीछे कर लिया और कहा, "तात्! मेरे पाँव पड़ने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
छुटकारा नहीं हो सकता। यदि पाँव छूना है तो चलो श्रीराम के पाँव पकड़ो और मैं अपने पिता के मित्र की सहायता कर दूंगा कि वह आपके दोषों को क्षमा कर दें।"

इस पर रावण लज्जित अनुभव करने लगा। वह खीझ गया और बोला, "देखो अंगद! अब तुम यहाँ से जाओ और अपने स्वामी से जाकर कह दो कि लंका में मूर्ख वानर नहीं बसते हैं। यहाँ अदिति के वंशज और स्वर्गलोक के विजेता राक्षस रहते हैं। यदि उसे अपना जीवन प्रिय है तो वह वापस लौट जाए। युद्ध उसके मान का नहीं है। देव-लोक विजयी रावण को एक वनवासी लाखों वानरों के झुण्ड के साथ मिलकर भी पराजित नहीं कर सकेगा।"

अंगद तो पहले ही ऐसी आशा करता था, परन्तु विभीषण के सुझाव पर श्रीराम ने यह अन्तिम प्रयास किया था जिससे युद्ध जैसा भयंकर कर्म न हो।

: 37 :

अंगद के असफल लौट आने पर युद्ध अवश्यम्भावी हो गया। वैसे सुग्रीव इत्यादि तो अंगद के जाने से पूर्व भी यह समझ रहे थे कि युद्ध अब टल नहीं सकता। अंगद का भेजा जाना तो विभीषण की प्रेरणा का परिणाम था।

जब अंगद ने रावण की मानसिक अवस्था का चित्रण किया तो राम और लक्ष्मण अपने आसन से उठ अपने धनुष-बाण को ठीक करने लगे, परन्तु सुग्रीव ने हाथ जोड़ कहा, "महाराज! अभी आप बैठिये। उन्होंने हमें वानर कहा है तो जिस तरह वानर मधुमक्खियों को उनके छत्ते से निकाल कर छत्ते पर अधिकार करते हैं उसी तरह हम उन्हे लंका से बाहर निकालने का आयोजन करेंगे।"

"क्या अभिप्राय है?"

"लंका में सुरक्षित बैठे राक्षसों को परास्त करने में तो वर्षों लग जायेंगे। हमें चाहिए कि लंका में इतनी गर्मी उत्पन्न कर दी जाये कि राक्षस अपना सुरक्षित स्थान छोड़ दुर्ग से बाहर आ जाएँ। एक बार रावण बाहर युद्ध के मैदान में आ जाए तो उसको मार डालने पर युद्ध समाप्त हो जाएगा।"

अत: सेना को आज्ञा हो गयी कि लंका-दुर्ग की प्राचीर को तोड़-फोड़ दो। साथ ही साथ लंका की प्राचीर के बाहर रहने वाले तथा घूमने-फिरने वाले राक्षसों को जीवित अथवा मृत दीवार के भीतर कर दो। अब वानर सेना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिड्डी-दल की भाँति लंका दुर्ग पर लपक पड़ी दो दिन के घमासान युद्ध के उपरान्त द्वीप-भर के राक्षस लाखों की संख्या में लंका-दुर्ग के भीतर अपनी रक्षार्थ जा पहुँचे। पुरी के बाहर उद्यान, भवन, मार्ग और जल के स्रोतों पर अधिकार कर लिया गया।

लंकापुरी में द्वीप-भर के लोग समा नहीं सकते थे। नागरिकों और राक्षस सेना में छुटपुट झड़पें होने लगीं। विवश सेना स्वयं ही लंका के द्वार खोल बाहर मैदान में आकर लड़ने को तैयार हो गयी।

घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। वानर-सेना उत्साह से भरी हुई थी और राक्षस सेनापति हनुमान व अंगद के शक्ति प्रदर्शन से भयभीत हो चुके थे।

: 38 :

जब राम की सेना लंका के द्वारों पर प्रहार-पर-प्रहार कर रही थी और द्वार अति सुदृढ़ होने पर भी वानर सेना के निरन्तर दिन-रात के प्रहारों से टूटने-फूटने लगे तो युद्ध-विषय पर विचार करने के लिए रावण ने सभा बुला ली।

सभा में रावण ने कहा, "पुरी का उत्तरी द्वार जर्जर हो गया है और समाचार है कि किसी भी समय वानर सेना उधर से नगर में घुस आयेगी। एक बार शत्रु सेना नगर में घुस आयी तो फिर लंका छोड़ भागना पड़ेगा। नगरवासी भयभीत हैं और मुझे भय है कि राम की सेना को देखते ही ये लोग उसकी जय-जयकार करने लगेंगे।

प्रहस्त का कहना था, "महाराज! यह नागरिकों का दोष नहीं है। नागरिक एक व्यक्ति जिसे हम वानर कह रहे थे, द्वारा घटित विनाश को देख चुके हैं और जब सहस्त्रों की संख्या में वैसे ही वानर नगर में वही कुछ करने लगे जो एक वानर कर गया है तो फिर कौन अपने पक्ष को प्रबल मानेगा? हमसे भूल हुई है कि हमने उसे उपद्रव के पश्चात जीवित छोड़ दिया।"

इस पर मेघनाथ ने कहा, "उस समय हमने यत्न तो किया था कि उसे जीवित जला डालें, परन्तु उसको जलाना हमारे ही विपरीत सिद्ध हुआ था। हम तो उसे जला नहीं सके, इसके विपरीत उसने ही लंका को फूंकने का प्रयत्न किया था।"

रावण ने इस विवाद को बन्द करते हुए कहा, "भूत के विषय में जो विचार करते रहते हैं, वे सदा विफल होते हैं। पीछे को देखने वाले आगे नहीं चल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते।"

"परन्तु महाराज! अपने अनुभव से जो लाभ नहीं उठाते, वे भविष्य को भी बना नहीं सकते और नीति भी यह कहती है कि जो भविष्य में दूर तक नहीं देखता, वह ठोकर खाकर गिर पड़ता है।"

रावण इस प्रकार के काल्पनिक सिद्धान्तों पर बहस करना नहीं चाहता था। वह वर्त्तमान संकट को टालना चाहता था। इस कारण उसने उतावली में पूछ लिया, "प्रहस्त! तुम बहुत बुद्धिमान् माने जाते हो। इस संकट को टालने का कोई उपाय बताओ।"

इस पर प्रहस्त ने हाथ जोड़कर कहा, "महाराज! मैं उपाय बताने के लिए यह पृष्ठ-भूमि तैयार कर रहा हूँ। मेरा यह कहना है कि लंका छोड़कर भागने के स्थान पर यह अच्छा होगा कि लंका-द्वार पर श्वेत पताका फहरा दी जाये।"

"क्या अभिप्राय है तुम्हारा?"

"मेरा अभिप्राय यह है कि राम से सन्धि कर ली जाये। सीता को वापस कर दीजिये और उनको अपनी वानर-सेना लेकर लंका द्वीप छोड़ जाने की शर्त रख दीजिये।"

"तो पराजय स्वीकार कर लूँ"

"महाराज! यह पराजय नहीं होगी। आप पुन: अपना साँस्कृतिक कार्य चला सकेंगे। हमें सुग्रीव से उन्हीं शर्तों पर सन्धि कर लेना चाहिये जिन पर उसके भाई वाली ने कि थी।"

"अब लोग नहीं मानेंगे।" रावण ने कहा।

"महाराज! यदि आप योजना में तथ्य समझते हैं तो आज्ञा करिये, मैं यत्न करता हूँ।"

रावण एक क्षण तक विचार करता रहा, फिर एकाएक भवों पर त्यौरी चढ़ाकर बोला, "एक बार सन्धि-चर्चा आरम्भ हुई तो राक्षस ही मेरे विरुद्ध हो जाएंगे। अत: इसका प्रश्न ही नहीं उठता।"

इस पर मेघनाथ बोल उठा, "महाराज! मेरी सम्मति है कि कल से नगर से बाहर निकलकर युद्ध किया जाए। इससे नागरिकों के भयभीत होने से सेना प्रभावित नहीं होगी। सेना लड़ेगी और नागरिक जीतने वाले की प्रतीक्षा करेंगे। वे तो जीतने वाले के गले में पुष्प-मालाएँ डालने के लिए सदा तैयार रहते हैं।"

"ठीक है। ऐसा ही हो।" रावण की आज्ञा हो गयी और मन्त्री-गण कुछ कह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं सके। इस पर भी सैनिक-वर्ग प्रसन्न था। वास्तव में लंका में सैनिक-राज्य को ही राम और वानरों ने आक्रमण द्वारा चुनौती दी थी। जितने भी असैनिक मन्त्री थे, वे राम से मैत्री कर लेने के पक्ष में थे। परन्तु चली सैनिकवर्ग की ही। उनका नेता रावण था, जिसकी प्रभुता उसके कुशल सैनिक होने के कारण थी।

जब यह गोष्ठी हो रही थी, मन्दोदरी सीता से मिलने से मिलने आयी हुई थी। सीता पूर्ववत् अशोक-वृक्ष के नीचे आसन बिछाये बैठी थी। उसके केश खुले थे और वह परमात्मा का चिन्तन कर रही थी।

मन्दोदरी को देख सीता ने हाथ जोड़ नमस्कार किया और उसे समीप आसन पर ही बैठने का निमन्त्रण दे दिया।

"सुनाओ बहन! कैसी हो?" मन्दोदरी ने पूछ लिया।

"त्रिजटा से आज का समाचार सुन मैं शीघ्र ही महारानी का आतिथ्य छोड़ने की आशा कर रही हूँ।"

"क्या बताया है त्रिजटा ने?"

"यही कि लंकापुरी चारों ओर से घिरी हुई है। पुरी का उत्तरी द्वार घमासान युद्ध-क्षेत्र बना हुआ है। उसने यह भी बताया है कि राक्षस-सैनिकों के शवों से पूर्ण मार्ग भर गया है और वे पार्श्व जिन पर फाटक टिके हैं, तिड़क गये हैं। सब आशा कर रहे हैं कि कल यदि वानर-सेना ने पुन: दृढ़ता से आक्रमण किया तो नि:सन्देह द्वार टूट जायेगा और वानर लंकापुरी में प्रवेश कर भीतर आ जाएंगे। त्रिजटा कह रही थी कि लंका के इतिहास में लंका की पराजय द्वितीय बार होने वाली है। एक बार पहले भगवान् विष्णु ने लंकापुरी पर आक्रमण किया था तो यहाँ प्रचण्ड अग्नि का प्रकोप हुआ था। उस अग्नि से बचने के लिए राक्षस भागकर पाताल देश में चले गये थे। अब भी वैसा ही होगा, परन्तु इस बार राक्षस भागकर पाताल देश में नहीं जा सकेंगे। उस समय विष्णु अकेले थे और राक्षसों के भागने के कई मार्ग खुले थे। इस बार लंका को श्रीराम के सेनानायकों ने घेर रखा है और यहाँ से लोग भाग कर लंका से बाहर कहीं नहीं जा सकेंगे।"

मन्दोदरी ने पूछ लिया, "परन्तु क्या दुर्ग टूट जायेगा और राम विजयी होंगे?"

"जब से वह लंका को फूँकने वाला परमवीर हनुमान यहाँ से होकर गया है तबसे ही मुझे विश्वास हो चुका है कि श्रीराम के सैनिकों की जीत होगी और मैं अपने उचित स्थान पर पहुँच सकूँगी।"

मन्दोदरी चुप रही। वह चिन्तित प्रतीत होती थी। सीता ने पुन: कहा, "मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दु:ख है कि आपके पतिदेव की पराजय हो रही है। परन्तु यह होना ही था। इसमें मुझे सन्देह नहीं था। कारण यह कि सत्य और धर्म की सदैव विजय होती है। यदि सन्देह था तो इस वात का कि मैं इस कलेवर में पति-दर्शन पा सकूंगी अथवा नहीं। अब इसमें भी सन्देह नहीं रहा।"

"हाँ! इस परिवर्तित परिस्थिति में तुम्हारे जीवन की रक्षा हमारा कर्त्तव्य हो गया है। एक भय राक्षसकुल की स्त्रियों के मन में समा गया है कि यदि सीता से किसी प्रकार का दुर्व्यवहार किया गया तो उसका प्रतिकार उसी रूप में लंका के राज्य-परिवार की सभी स्त्रियों से लिया जायेगा।

"उस भय का परिणाम यह हुआ है कि राक्षस कुल की अधिकांश महिलाओं ने मेरे पास आकर कहा है कि जव तक वर्तमान युद्ध का अन्त नहीं होता तव तक सीता का किसी प्रकार का अनिष्ट न हो। उनको अपने मरने और अपने को कष्ट दिये जाने का भय सता रहा है। वे यहाँ राक्षसों द्वारा अपहृत महिलाओं से किया गया दुर्व्यवहार देख चुकी हैं अत: वे नहीं चाहतीं कि विजित सेना उनके साथ भी उसी प्रकार का व्यवहार करे।"

सीता मुस्कराकर चुप कर रही। वात मन्दोदरी ने ही आगे चलायी। उसने कहा, "मैं अपने मरने से नहीं डरती। मैंने स्त्री-धर्म के विपरीत कभी कुछ नहीं किया। मेरे कारण ही मेरी प्रिय दासी और सखी त्रिजटा सदैव तुम्हारा मनोवल उच्च रखने का प्रयास करती रही है। अपनी सामर्थ्यानुसार पतिदेव को भी सन्मार्ग पर आरूढ़ रखने का यत्न किया है। इस कारण मैं जानती हूँ कि मेरा शेप जीवन प्रभु भक्ति में और अगला जन्म सुखकारक होगा। परन्तु हमारे परिवार की अन्य स्त्रियाँ ऐसा कुछ नही समझतीं। वे इसी जन्म को मानती हैं और इसके सुख-दु:ख के भोग के विपय में ही सोचती हैं। इस कारण उन्हें मरने का और वह भी वहुत कष्ट पाकर मरने का भय है। वे चाहती हैं कि मैं तुम्हारी तव तक रक्षा करूँ जव तक राक्षसों की पूर्ण विजय नहीं हो जाती और यदि हमारी विजय नहीं होगी तो राम के यहाँ आने पर तुम उसको सुरक्षित सौंप दी जाओ।"

"और महारानीजी!" सीता ने पूछ लिया, "आपको अपनी राक्षस विचारधारा पर विश्वास नहीं है?"

"नहीं। मेरी माँ देव-लोक की रहने वाली थी और मेरे युवा होने तक मैं उसके पास रही हूँ। उसकी शिक्षा का ही प्रभाव है कि मुझे जीव के अजर-अमर होने पर विश्वास है। मेरे देवर विभीषण भी ऐसा ही मानते हैं। वह अपने भाई को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ तुम्हारे पति की शरण में चले गये हैं।"

"मुझे विश्वास हो रहा है कि विजय राम की सेना की होगी। राक्षस सेना के साथ कुछ भी हो, परन्तु मैं यह मानती हूँ कि राक्षस स्त्री-वर्ग की स्त्रियों की मान-मर्यादा राम के सैनिकों के हाथ में भली-भाँति सुरक्षित है। उनको इसके लिए भय नहीं करना चाहिए।"

: 39 :

मेघनाथ को पुरी के उत्तरी द्वार पर वानरों की विजय से नींद नहीं आ रही थी। इस कारण वह आधी रात को ही युद्ध के लिए चल पड़ा और राम, लक्ष्मण के शिविर पर विमान में मंडराते हुए उसने अपना माया-वाण चलाया। माया वाण केवल एक वार प्रयोग किया जा सकता था और आमने सामने के युद्ध में प्रयोग होने पर सामने वाले को ही मारने सक्षम था। विमान से उस वाण को चलाने पर उसका असर कम हो गया और राम-लक्ष्मण और कई सैनिक उससे अचेत हो गए। अन्य सैनिक युद्ध से पूर्व ही दोनों को अचेत देख शोकमग्न हो गये। ऊपर आकाश से मेघनाथ को ऐसा प्रतीत हुआ कि दोनों मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं। इस पर वह अपने पिता रावण के आगार में जा पहुँचा। जव उसने राम-लक्ष्मण की मृत्यु का समाचार दिया तो रावण की आज्ञा से पूर्ण लंका में वाजे वजने लगे।

रावण की आज्ञा से सीता को विमान पर वैठाकर राम के शिविर पर उड़ान करायी गयी और वहाँ की हलचल दिखाकर यह समझाने का यत्न किया गया कि दोनों भाइयों की मृत्यु हो चुकी है।

सीता शोकग्रस्त हो गयी, त्रिजटा साथ ही थी उसको एक वात राम लक्ष्मण के शिविर पर दिखायी दी। उनके शिविर पर ध्वजा अभी भी पूर्ण ऊँचाई पर फहरा रही थी। त्रिजटा ने जव सीता को वह दिखाई तो वह चित में स्वस्थ हो पुनः नीचे देखने लगी।

उस समय तक राम और लक्ष्मण सचेत हो गये थे और उनके सैनिक वैद्यों ने यह घोपणा कर दी थी कि दोनों भाई और अन्य अचेत सैनिक सभी प्रकार से स्वस्थ हैं। देखते ही देखते वानर सेना में प्रसन्नता के लक्षण दिखायी देने लगे।

विमान में लौटते हुए सीता मन में साहस अनुभव कर रही थी। लंका में भी राम-लक्ष्मण के जीवित होने का समाचार गया तो होने वाले युद्ध की तैयारी पुनः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

होने लगी।

दो दिन से श्रीराम के सैनिक लंका पर आक्रमण करते रहे थे और दो दिन के
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भयंकर आक्रमण के परिणामस्वरूप वे आशा कर रहे थे कि पूर्ववत् राक्षस सुरक्षात्मक युद्ध करते रहेंगे और वे लंका में घुसने में समर्थ हो सकेंगे। परन्तु दिन चढ़ने पर उन्होंने देखा कि राक्षस सेना काले बादलों की भाँति पुरी में से निकल मैदान में व्यूह रचना करने लगी है। इस पर वानर सेना भी उसी प्रकार के युद्ध की तैयारी करने लगी।

दिन-भर दोनों सेनाओं में युद्ध होता रहा। अनेक वार मेघनाथ ने राम-लक्ष्मण को भड़काकर अपने सामने बुलाने का यत्न किया, परन्तु रात में घायल के कारण वे पूर्णत: स्वस्थ नहीं थे अत: युद्ध में सम्मिलित नहीं हुए थे। इस कारण मेघनाथ दिन में कई वार ललकारने पर भी राम-लक्ष्मण को युद्ध में खींच नहीं सका। इस दिन युद्ध का पलड़ा श्रीराम के सैनिकों का भारी रहा था इस कारण उनमें उत्साह की लहर थी और सायं होते ही अपनी वानर सदृश प्रवृति के कारण आस पास के फलोद्यानों में उछलकूद मचाने लगे और फल इत्यादि तोड़-तोड़ कर खाने लगे।

अगले दिन हनुमान आक्रमण करने की योजना बनाने लंका के उत्तरी द्वार के समीप खड़ा विचार कर रहा था कि धूम्राक्ष को पहचान गया। लंका में आग लगाने के पश्चात उसका इस सुभट्ट से अशोक-वाटिका के द्वार पर आमना-सामना हुआ था। उस दिन उसने एक मुक्का उसकी कनपटी पर जमाकर ही सन्तोष कर लिया था। आज उसे भेष बदलकर अपनी-सेना के आसपास घूमते देख, उसे गले से पकड़ पूछने लगा, "भाई! इस छद्मवेश में यहाँ क्या कर रहे हो?"

"ओह! तो तुम पहचान गये हो? उस दिन तो तुम भाग गये थे। अब द्वन्द्व-युद्ध कर सकते हो।"

बस फिर क्या था! दोनो में दाँव-पेच, मुक्का-मुक्की होने लगी।

दोनों में अब निर्णयात्मक युद्ध हो गया। एक घड़ी भर में ही हनुमान ने उसको यमलोक पहुँचा कर उसका शव उत्तरी द्वार पर खड़ी राक्षस सेना के समीप फिकवा दिया।

रावण को धूम्राक्ष की मृत्यु का समाचार मिला तो उसने शूरवीर सेनानायक वज्रदंष्ट्र को एक भारी सेना सहित वानरों को लंका से खदेड़ देने की आज्ञा देकर युद्ध-भूमि में भेज दिया।

युद्ध लंकापुरी से बाहर मैदान में होने लगा। राक्षस सेनापति वज्रदंष्ट्र स्वर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

से सुसज्जित रथ पर सवार हो सेना को ले, युद्ध करने लगा। अभी दिन के तीन प्रहर भी समाप्त नहीं हुए थे कि अंगद और वज्रदंष्ट्र का आमना-सामना हो गया। दोनों में भयंकर द्वन्द्व-युद्ध होता देख दोनों सेनाएँ लड़ना छोड़ इन दोनों का युद्ध देखने लगीं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु अंगद ने वज्रदंष्ट्र को मार गिराने में अधिक समय नहीं लिया। उस दिन का युद्ध वानरों में अपार उत्साह-वृद्धि का कारण बन गया। परन्तु रावण ने अविलम्ब एक नवीन सेना के साथ अकम्पन को युद्ध-भूमि पर भेज दिया। रावण का विचार था कि नयी सेना भेजने से थकी वानर सेना युद्ध नहीं कर सकेगी और भाग खड़ी होगी। परन्तु हुआ इसके विपरीत। वानर-सेना का दिन के पूर्व भाग में हुई विजय से उत्साह वढ़ा हुआ था और अकम्पन को मारने और उसकी सेना को खदेड़ने में वहुत देर नहीं लगी।

अव रावण ने भी रात के समय युद्ध-विराम रखना ही उचित समझा।

: 40 :

अगले दिन रावण स्वयं युद्ध का संचालन करने युद्ध-भूमि पर आया, परन्तु लाख यत्न करने पर भी वह राम-लक्ष्मण का सामना प्राप्त नहीं कर सका। उनकी सेना पहले ही वहुत विशाल थी जिसमें उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी। दूर दूर से राक्षसों द्वारा पीड़ित वनवासी योद्धा आ-आकर श्री राम की सेना में प्रवेश पा रहे थे। उन्होंने रावण को श्री राम लक्ष्मण तक पहुँचने नहीं दिया।

राक्षस सैनिकों के शवों के ढेर लग गए थे और अव सैनिक भय से भी कम होते जा रहे थे। अत: रावण ने निश्चय किया कि पहले साधारण वानर सैनिकों को मार-मार कर कम किया जाए तव ही राम-लक्ष्मण को मारा जा सकेगा। इस कारण अगले दिन नारान्तक, देवान्तक, अतिकाय, त्रिशिरा और महापार्श्व को वारी-वारी सेनापति वना युद्ध में भेजा, परन्तु वे वानर-सेना को कुछ भी विशेष हानि नहीं पहुँचा सके और दिन के तीसरे प्रहर तक सभी मार डाले गये। इससे रावण वहुत ही व्याकुल हुआ और अपने पुत्र मेघनाथ को युद्ध में जाने की प्रेरणा देने लगा।

इन्द्रजीत मेघनाथ के पास इन्द्र से विजित व्रह्मास्त्र भी था जो कम अन्तर से प्रयोग करने पर सामने खड़े सभी के लिए निश्चित मृत्यु सिद्ध होता था परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतावले मेघनाथ ने युद्ध-भूमि में पहुँचते ही दूर खड़े लक्ष्मण पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर दिया। परिणाम यह हुआ कि उसका असर आधा रह गया और राम के सैनिक केवल घायल हो अचेत होने लगे। लक्ष्मण भी मूर्छित हो गये। रात घिर आई थी और मेघनाथ लक्ष्मण को मृत समझ लौट चुका था। घायलों की सेवा करते हुए वैद्यराज जामवन्त भी घायल हो गया था। वह इस अस्त्र से घायल हुओं की चिकित्सा जानता था। उसने वताया कि संजीवनी नाम की वूटी लायी जा सके तो लक्ष्मण और अन्य सभी घायलों का उपचार किया जा सकता है।

विभीषण के साथ उसका मित्र वैद्य सुषेण भी लंका छोड़कर आया हुआ था। उससे परामर्श किया गया तो उसने जामवन्त के निदान का समर्थन किया और वताया कि वहाँ संजीवनी वूटी उपलव्ध नहीं अत: यदि हिमालय पर्वत से दिव्य संजीवनी लाई जाए तो उसका प्रभाव अत्यन्त चमत्कारी है। तुरन्त योजना वन गयी। उसी समय हनुमान को विभीषण के विमान पर हिमालय पर भेज दिया गया। वहाँ औषधि ढूँढ़ने में कठिनाई अनुभव हुई तो हनुमान सव-की-सव वूटीयों के वड़े वड़े गट्ठर एकत्रित कर विमान में ले आया। उस दिव्य औषधि संजीवनी की सुगन्ध से ही ब्रह्मास्त्र से घायल, स्वस्थ हो उठ खड़े हुए।

अगली प्रात: तक लक्ष्मण सचेत हो पुन: युद्ध के लिए तैयार हो गया। पुन: मेघनाथ से उसका युद्ध हुआ। ब्रह्मास्त्र नि:शेष हो चुका था। इस कारण अव सामान्य शस्त्रास्त्रों से युद्ध हो रहा था। इस पर लक्ष्मण ने मेघनाथ को मार डाला।

रावण अव स्वयं युद्ध में आने से डरने लगा। वह अपने सेना-पतियों को ही भेज रहा था। स्वयं वह प्रासाद से वाहर ही नहीं निकलता था। उसे युद्ध-भूमि पर लाने के लिए लंका को जला डालने की योजना वना दी गयी। लंका-दुर्ग के भीतर के क्षेत्रों को अग्नि में भस्म किया जाने लगा तो वहाँ के रहने वाले लंका-दुर्ग के भीतर महल की परिधि में घुसने लगे। जव जनसंख्या वहाँ वढ़ने लगी तो रावण को नगरवासियों से विद्रोह का डर लगने लगा और विवश हो वह वचे-खुचे राक्षस सैनिकों को लेकर युद्ध-भूमि में आ खड़ा हुआ।

अव श्रीराम तथा रावण दोनों में युद्ध हुआ और अपने नवीन शस्त्रास्त्रों की सहायता से राम ने रावण को मार गिराया।

रावण के धराशायी होते ही राक्षस चारों ओर भागने लगे। जिस और जिसको मार्ग मिला, उसी ओर वे भाग खड़े हुए। इन भागते हुए राक्षस सैनिकों का पीछा कर राम के सैनिक जय श्रीराम का घोष करते हुए उन्हें समाप्त करने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध के अन्तिम दिन देवता भी अपने-अपने विमानों में बैठे हुए युद्ध-भूमि पर इस अपूर्व संघर्ष का अन्त देखने आये थे और रावण के मरकर भूमि पर गिरते ही विमानों से राम-लक्ष्मण और उनकी-सेना पर पुष्प-वर्षा करने लगे थे।

इसके उपरान्त तो एक घड़ी में ही लंका के द्वार खुल गये और वानर-सेना श्रीराम का जयघोष करती हुई लंका में घुस गई। जैसी कि आशा की जाती थी, वानर-सेना के साथ लंका के नागरिक भी श्रीराम और महाराज विभीषण की जय-जयकार करने लगे।

इस हर्षोल्लास में राम ने लंका का राज्य-विभीषण को दे दिया। विभीषण की इच्छा थी कि श्रीराम लंका में प्रवेश करें और वहाँ पर उसे सिंहासनारूढ़ करें, परन्तु राम ने स्पष्ट कहा "मेरे वनवास की अवधि अभी पूर्ण नहीं हुई। इस कारण पिता की आज्ञानुसार मैं किसी नगर में प्रवेश नहीं करूँगा। अत: राज्याभिषेक यहाँ रणभूमि पर ही होगा।"

विजयी श्रीराम व नवीन राजा विभीषण का राज्याभिषेक देखने, लंका के निवासी सहस्त्रों की सँख्या में रणभूमि से कुछ हटकर एकत्रित थे। इनमें अधिकांश स्त्रियाँ थीं। बलशाली रावण व उसके पुत्र इन्द्रजीत मेघनाथ का सभी अन्य सेनापतियों सहित वध करना वाले श्रीराम का सौम्य रूप, सुगठित बलिष्ट तन, बहुत-सी विकृत बुद्धि वाली स्त्रियों के मन में सीता के प्रति ईर्ष्या व द्वेष उत्पन्न कर रहा था। ऐसी स्त्रियाँ यह समझ रही थीं कि यदि सीता जैसी सुन्दर स्त्री इस संसार में उत्पन्न न होती तो लंका का विनाश न होता। कुत्सित मनोवृति वाली इन स्त्रियों ने ईर्ष्यावश प्रचार करना आरम्भ कर दिया कि रावण सीता को पतित कर चुका है। रावण-राज्य में अनेक लोभी और पापी थे जो रावण की कुनीति से लाभ उठाते थे। यह दुष्प्रचार उनके मन को सन्तोष देने वाला प्रतीत हुआ और वे सभी इस बात को फैलाने लगे। यह लांच्छन वन की अग्नि की भाँति फैल गया और वानर-सेना को भी सुनायी दिया और उनके द्वारा राम के कर्णगोचर भी हुआ।

इस किवदन्ति से श्रीराम के मन में एक विषम दुविधा उत्पन्न हो गयी। उनके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि अयोध्या वापस लौटने पर भरत उन्हे पुन: राज्य-गद्दी पर बिठाने के लिए उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। वह कौशल नरेश और प्रतिष्ठित इक्ष्वाकु-वंश के वंशज और रघुकुल के उत्तराधिकारी हैं। एक लांच्छन वाली स्त्री को महारानी बनाने पर सारा कुल निरादर पायेगा। इस दुविधा में फँसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हुए राम ने हनुमान को कहा, "हनुमान! तुम विजयी-सेना के सेनापति हो। तुम्हारी सेना ने लंका विजय की है और रावण को पराजित कर सीता को उसके पंजे से मुक्त कराया है। इस कारण यह तुम्हारा ही अधिकार है कि तुम अब सीता देवी के पास जाओ और उसे इस युद्ध के परिणाम से सूचित करो।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उसे कहो कि रावण ने रघुकुल की एक स्त्री का अपहरण कर कुल को कलंकित किया था और मैंने उसको एक घोर युद्ध में पराजित कर रघुकुल पर लगे इस लांच्छन को धो डाला है।

"अब वह रावण की वन्दी नहीं। इस पर भी यह अब उसका अधिकार है कि मुझे वताये कि वह क्या चाहती है।"

हनुमान ने अशोक-वाटिका में श्रीराम का सन्देश सीताजी को दिया। सीता इस बात से भौचक्क हनुमान का मुख देखती रह गयी। उसने विचार कर हनुमान से पूछा, "क्या वह नहीं जानते कि मैं क्या चाहती हूँ?"

"माताजी!" हनुमान ने कहा, 'मैंने अक्षरशः श्रीराम का सन्देश सुना दिया है।"

सीता ने मुख पर कठोर मुद्रा बना कह दिया, "श्रीराम से कह दो कि मैं अपने पति के दर्शन की अभिलापा रखती हूँ।"

इस उत्तर पर राम ने लंकेश विभीपण को कहलवा भेजा कि वह सीता को भेज दें। सीता आयी तो राम ने उसे लंका में विख्यात किवदन्ति सुनाकर कहा, " इस निन्दा के कारण मैं तुम्हें अपने साथ अयोध्या नहीं ले जा सकता।"

"परन्तु आपको इस बात का विश्वास कैसे हो गया कि यह सत्य है?" सीता ने कहा।

"प्रश्न सत्य-असत्य का न होकर लोक निन्दा का है। अपने शुद्ध, पवित्र होने का कोई प्रमाण तुमको देना होगा जिससे यह निन्दा समाप्त हो।

"मैं यही कह सकती हूँ कि मैं यदि जीवित हूँ तो मेरी रक्षक त्रिजटा द्वारा मुझे साहस प्रदान करने के कारण। इस पर भी यदि मेरे साथ दुर्व्यवहार किया गया होता तो मैं अब तक अपने को अग्नि में भस्म कर चुकी होती। मैं इसका प्रमाण भी दे सकती हूँ कि न तो मुझे इस देह का कोई मोह है और न ही अग्नि का भय। केवल इस जन्म में आपके दर्शन की अभिलापा थी वह आज पूर्ण हुई। मैं इन निन्दकों के सामने जीवित चिता में प्रवेश कर अपने साहस की परीक्षा दे सकती हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

"परन्तु इससे तो तुम जीवित नहीं रहोगी।"

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरा यह शरीर नहीं रहेगा। यह अग्नि-परीक्षा तो इसी कारण दे रही हूँ जिससे सभी को पता चले कि मुझे इस तन और इसके विषयों से मोह नहीं है।"

"तो ठीक है।"

"भैया लक्ष्मण!" सीता ने समीप खड़े लक्ष्मण की ओर देख कर कहा, "शीघ्र चिता तैयार करो। मैं अब किसी के मन में यह संशय नहीं रहने देना चाहती।"

लक्ष्मण पिछले चौदह वर्ष से सीता की आज्ञा का ऐसे पालन करता था जैसे वह अपनी माँ की आज्ञा का पालन करता था। वह प्रश्न-भरी दृष्टि से राम का मुख देखने लगा।

राम ने कहा, "सीता का आदेश मानना चाहिये।"

लक्ष्मण ने पुन: राम के मुख की ओर देख कहा, "भैया!"

"लक्ष्मण! यह करना ही होगा। तुम नहीं करोगे तो मैं स्वयं ही सीता के लिए चिता तैयार करूँगा।"

विवश हो लक्ष्मण ने लकड़ियाँ एकत्रित करनी आरम्भ कर दीं।

: 41 :

इस दिन से दो मास पूर्व जब अभी सेतु बाँधा जा रहा था तो लंका-विजय पर सन्देह प्रकट किया जा रहा था। इस कारण जब पूर्ण राक्षस नेतृत्व विनाश को प्राप्त हो गया तो सन्देह करने वालों को यह स्वप्नवत् ही दिखायी दे रहा था। इस पर भी यह वस्तुस्थिति थी। रावण की मृत्यु हो चुकी थी। राम ने युद्ध-भूमि पर ही विभीषण का राजतिलक कर दिया था। श्रीराम की सेना में आह्लाद और सन्तोष के ढोल बजाये जा रहे थे। इन सब उत्सवों पर श्रीराम पक्ष की सेना में प्रसन्नता से नाच-रंग हो रहे थे।

इस समय एकाएक सेना के आह्लाद पर तुषार पड़ गया। पूर्ण सेना में यह समाचार फैल गया कि सीताजी के सतीत्व पर राम ने सन्देह किया है। इस कारण सीता जी पति के इस सन्देह के प्रतिरूप अग्नि में जीवित भस्म होने जा रही हैं। यह विख्यात हो गया कि लक्ष्मण को राम का आदेश हुआ है कि सीता के लिए चिता तैयार कर दे और लक्ष्मण आँखों से अविरल आँसु बहाता हुआ चिता सजा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

लक्ष्मण को ही चिता सजाने की आज्ञा हुई थी। इस कारण इस अशोभनीय कार्य में कोई दूसरा सहायक नहीं हो रहा था और इसमें समय लग रहा था। चिता के एक ओर राम खड़े थे और दूसरी ओर सीता खड़ी थी। दोनों के मुख पर दृढ़ मुद्रा वनी हुई थी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस दु:खद घटना का समाचार लंका में भी पहुँचा और वहाँ के शेष निवासी भी सीता को चिता में भस्म होते देखने के लिए आ रहे थे।

यह समाचार विभीषण को मिला। वह इस समाचार को सुनते ही रथ पर सवार हो चिता के चारों ओर खड़े विशाल जन-समूह में से मार्ग वनाता हुआ राम और सीता के वीच में आ खड़ा हुआ। उसने हाथ जोड़ राम को नमस्कार कर कहा, "प्रभु! यह क्या हो रहा है?"

"मैंने," राम ने गम्भीर भाव से कहा, "देवी सीता से कहा है कि लंका में यह वात विख्यात हो रही है कि आपके भाई रावण ने इसको पतित कर दिया है। इस लांच्छन का स्पष्टीकरण देने के स्थान वह जीवित ही चिता में भस्म होना पसन्द करती है। अत: इसके कहने पर ही यह चिता वन रही है।"

"परन्तु महाराज! यह बात मिथ्या है।"

"यह देवी सीता को कहना चाहिये।"

"राम!" विभीषण ने कुछ रोष में कहा, "आप यह विपरीत व्यवहार कर रहे हैं। आपको देवी सीता पर इस प्रकार का लांच्छन लगाने वाले को कहना चाहिए कि वह इस लाँच्छन का प्रमाण दे। आपको अपनी अर्द्धांगिनी, जिसकी परीक्षा आप चौदह वर्ष के वनवास में कर चुके हैं, पर श्रद्धा और विश्वास करना चाहिए।"

"राजा विभीषण!" राम ने दृढ़ता से कहा, "यह मेरा निजी व्यवहार है। इसमें आपको हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।"

"पति-पत्नी में विवाद निजी व्यवहार नहीं हो सकता। यह दो व्यक्तियों में झगड़ा है और यह राजा के न्यायाधिकरण का विषय है। आपने ही मुझे यहाँ का राजा वनाया है और मैं यह अपना अधिकार मानता हूँ कि इस मामले में हस्तक्षेप करूँ। मैं आपको यह स्वीकृति नहीं दे सकता कि आप किसी को आत्म-हत्या के लिए प्रेरित करें।

"राम! सुनो, आपने रावण पर विजय पायी है; इसका यह अर्थ है कि यहाँ राक्षस संस्कृति समाप्त हो गयी है अव यहाँ वैदिक धर्म-व्यवस्था लागू हो चुकी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इस देश का राजा मैं हूँ और मैं आदेश देता हूँ कि चिता वनानी वन्द कर दी जाये।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"लक्ष्मण! यदि तुम यह कर्म आगे करोगे तो मैं तुम्हें वन्दी बनाकर लंका के न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित किए जाने की आज्ञा दे दूंगा।"

"परन्तु राजा विभीपण!" राम ने कह दिया, "मेरी आज्ञा के विरुद्ध आज्ञा देकर तुम मुझसे भी युद्ध करोगे क्या?"

"हाँ.... राम पहले सीता को मुक्त कराने के लिए आप युद्ध कर रहे थे। अव उनकी रक्षा के निमित्त मैं युद्ध करूँगा।"

"परन्तु पराजित सेना का विजयी सेना से युद्ध हो सकेगा क्या?"

"नहीं। यह विजयी सेना मेरी ओर से आपके विरुद्ध लड़ेगी। इस विपय में धर्म मेरी ओर है।"

"और," हनुमान ने हाथ जोड़कर कहा, "मेरे सब सैनिक उससे युद्ध करेंगे जो माता सीता पर किसी प्रकार का सन्देह करता है।"

"विभीपण!" राम ने कहा, "यहाँ लंका में तुम्हारा राज्य है और किष्किन्धा में सुग्रीव का, परन्तु यह तो अयोध्या में जाना चाहेगी। वहाँ तुम लोग इसकी रक्षा कैसे कर सकोगे?"

"राम!" विभीपण का कहना था, "हम माता सीता को यहां से तव तक जाने नहीं देंगे, जव तक उनकी सुरक्षा के प्रति हम आश्वस्त नहीं होंगे। हम किसी भी सूरत में किसी निरपराध की हत्या होते नहीं देख सकते और एक सति-साध्वी के लिए हम सव अपने प्राणों का होम करने के लिए तैयार हैं।"

इस विवाद को समाप्त करने के लिए सुग्रीव ने कहा, "प्रभु! अयोध्यावासियों को विश्वास कराना देवताओं का कर्त्तव्य है। जव तक वे ऐसा नहीं करते, हम आपको और माता सीता को अयोध्या नहीं जाने देंगे।"

इस समय आकाश में विमानों की गड़गड़ाहट सुनाई देने लगी और सवकी दृष्टि आकाश की ओर चली गयी।

इन्द्र, वरुण, शिव और व्रह्मा तथा अन्य कई देव-गण विमानों से उतर राम के सामने आ कहने लगे, "राम! सीता सूर्य के समान उज्जवल और सतीत्व के ओज से देदीप्यमान है और तुम व्यर्थ में लोक-निन्दा से डरते हो। इस तपस्विनी पर किसी प्रकार का लांच्छन नहीं लग सकता।"

देवताओं की इस घोपणा पर पूर्ण विजयी सेना और लंका-निवासियों में माता सीता की जय-जयकार होने लगी। व्रह्मा ने कहा, "वेटी सीता! तुम श्रीराम से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटी हो अत: तुम पति के चरण-स्पर्श करो। मैं घोषित करता हूँ कि तुम कमल समान निर्मल और निर्दोष हो।"

सीता ब्रह्मा की आज्ञा मान चरण-स्पर्श करने को झुकने ही लगी थी कि श्रीराम ने उसे रोक कर कहा, "सीते! मुझे एक पल के लिए भी तुम्हारे सतीत्व पर सन्देह नहीं हुआ। तुम्हारा स्थान मेरे पार्श्व में है चरणों में नहीं! जन साधारण के बीच तुम्हारी प्रतिष्ठा के लिए ही मुझे देवताओं की साक्षी की आवश्यकता थी। आज के बाद युगों युगों तक सीता को साध्वी के रूप में याद किया जाएगा। अकेले राम का तो का कोई महत्व नहीं, राम का महत्व तो 'सीता के राम' से ही है।"

श्रीराम और सीता के इस मिलन पर सभी नाच नाच कर हर्ष प्रकट करने लगे। ब्रह्मा ने वहाँ से विदा होते हुए कहा, "राम! तुम्हारे वनवास की अवधि समाप्त हो चुकी है। रावण का वध हो चुका है। अब तुम्हे अयोध्या की सुध लेनी चाहिए।"

: 42 :

विभीषण ने लंका राज्य की ओर से बहुत-से उपहार राम और लक्ष्मण को दिए और राज्य का पुष्पक-विमान राम को देते हुए कहा, "अब आपको अयोध्या इसमें ही जाना चाहिए।"

राम, सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव, अंगद, हनुमान, विभीषण और उनके साथ सैकड़ों वानर (राक्षस सेना द्वारा अब तक वनवासियों की सेना को वानर सेना कहा जाने लगा था।) और राक्षस अनुचर विमान में सवार हो चल पड़े। लंका से चल वे महर्षि भारद्वाज के आशीर्वाद के लिए प्रयागराज में उनके आश्रम पर पहुँचे।

भारद्वाज ने राम का स्वागत किया और आश्रम में उनको ठहराया। हनुमान को एक तीव्र अश्व पर अयोध्या में राम के आने की सूचना देने भेज दिया गया।

नन्दी ग्राम में जब हनुमान ने भरत के सम्मुख उपस्थित हो राम के अगले दिन आने का समाचार सुनाया तो भरत प्रसन्नता से अश्रू बहाने लगा। उसने तुरन्त नगर में घोषणा करवा दी, "अयोध्या के राजा, भैया श्रीराम महारानी सीता और लक्ष्मण सहित कल यहाँ पहुंच रहे हैं। अयोध्या-नगरी को सजाओ और उनके भव्य स्वागत की तैयारी करो।"

श्रीराम के आने की सूचना पूर्ण अयोध्या में सूर्य के प्रकाश समान फैल गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घाटों, वाटों, महलों, अटारियों, घरों के भीतर और वाहर पूर्ण नगरी में हर्पोल्लास के नाद और ढोल नगाड़े वजने लगे। चौदह वर्प से सोयी नगरी जाग पड़ी। पूर्ण नगर सजाया जाने लगा।

अगले दिन राम का पुष्पक-विमान अयोध्या के ऊपर चक्कर काटता हुआ नगर के वीच मैदान में उतरा। नगर के गणमान्य जन, राज्य-परिवार के सदस्य और मन्त्री-गण वहाँ स्वागत के लिए खड़े थे।

अयोध्या का प्रत्एक नागरिक हर्प में मग्न हो नाच-गा रहा था। पूर्ण अयोध्या नगरी में दीप माला की गयी व मीठाईयाँ वाँटी गयी। तव से प्रति वर्प इसी दिन सम्पूर्ण भारत में दीपों के तयोहार के रूप में दीपावली मनाई जाती है।

****

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षाप्रद, ज्ञानवर्धक, रोचक प्रकाशन

महर्षि दयानन्द	गुरुदत्त
श्री कृष्ण	गुरुदत्त
जगत की रचना	गुरुदत्त
महाभारत	गुरुदत्त
हिटलर की कहानी	गुरुदत्त
श्री राम	गुरुदत्त
धर्मवीर हकीकत राय	गुरुदत्त
वीर पूजा (चन्द्रशेखर आज़ाद के जीवन पर)	गुरुदत्त
डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी अन्तिम यात्रा	गुरुदत्त
डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी जीवन यात्रा	शिवकुमार गोयल
स्वामी विवेकानन्द	शिवकुमार गोयल
अमर सेनानी सावरकर	शिवकुमार गोयल
क्रान्तिकारी आन्दोलन (सशस्त्र क्रांति का इतिहास)	शिवकुमार गोयल
धरती है बलिदान की	शान्ता कुमार
मदनलाल ढींगरा और ऊधमसिंह - लंदन में गोली	बनारसीसिंह
पांडवप्रिया पांचाली	सचदेव
क्रान्तिकारी भगत सिंह	सुरेश
झांसी की रानी	परमेश्वर प्रसाद सिंह
महाराणा प्रताप	परमेश्वर प्रसाद
वीर बन्दा बैरागी	नवीन जैन
क्रान्तिकारी आज़ाद	शंकर सुल्तानपुरी
क्रान्तिकारी सुभाष	शंकर सुल्तानपुरी
क्रान्तिकारी देशभक्त सिख	भरतराम भट्ट
क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल	डा० ईश्वर प्रसाद वर्मा
क्रान्तिकारी सुखदेव	अरुण सागर
क्रान्तिकारी राजगुरु	अरुण सागर
शक्तिपुत्र शिवाजी	सीताराम गोयल
हरि सिंह नलवा	अशोक कौशिक
बोध कथाएँ	अशोक कौशिक
धार्मिक कथाएँ	अशोक कौशिक
शिक्षाप्रद कथाएँ	अशोक कौशिक
पौराणिक कथाएँ	योगेन्द्र दत्त
देवयानी तथा अन्य कथाएँ	योगेन्द्र दत्त
सदाचार की कथाएँ	योगेन्द्र दत्त
मानवता की कथाएँ	योगेन्द्र दत्त
अनमोल कहानियाँ	पूनम त्यागी
देवता स्वरूप भाई परमानन्द	श्री हरिबंश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या R 089.9143 GUR-S   आगत संख्या 168005

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदत्त एम. एस.सी.

8-12-1894 से 8-4-1989

प्रथम उपन्यास ''स्वाधीनता के पथ पर'' से ही ख्याति की सीढ़ियों पर जो चढ़ने लगे कि फिर रुके नहीं।

बिज्ञान की पृष्ठिभूमि पर वेद, उपनिषद् दर्शन इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया तो उनको ज्ञान का अथाह सागर देख उसी में रम गये।

वेद, उपनिषद् तथा दर्शन शास्त्रों की विवेचना एवं अध्ययन अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत करना स्व. गुरुदत्त की ही विशेषता थी।

उपन्यासों में भी शास्त्रों का निचोड़ तो मिलता ही है, रोचकता के विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनका कोई भी उपन्यास पढ़ना आरम्भ करने पर समाप्त किये बिना छोड़ा नहीं जा सकता।

उनका किशोर साहित्य तर्क पर खरा उतरता है इस पर भी प्रामाणिक है।

हिन्दी साहित्य सदन

2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54, देश बंधु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005
फोन : 23553624, 23551344 ई-मेल : indiabooks@rediffmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar